चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र

1st Oct '55

6 as

एक बार बोधिसत्व एक किसान के घर पैदा हुआ। उसके माँ-बाप उसका बहुत लाड़ से लालन-पालन कर रहे थे। क्योंकि वह इकलौता था, और बहुत दिनों बाद पैदा हुआ था, इसलिए उन्होंने उसका नाम कमल रखा।

कमल छुटपन में ही बड़ों की अक्लमन्दी और होशियारी दिखाने लगा था। भले ही उसके माँ-बाप उसको अधिक प्यार करते हों, पर वह हमेशा अपने बाबा को ही अधिक प्यार करता।

बाबा बहुत बूढ़ा था। कोई काम न कर पाता था। दूसरों को उसकी दिन-रात सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ती। कमल की माँ को यह अच्छा न लगता था। वह बहुत दिन तक यह चाहती रही कि कब बूढ़ा मरता है; परन्तु वह मरा नहीं।

उसने एक दिन अपने पति से कहा- "तुम्हारे पिता के कारण मेरे नाक में दम आया हुआ है।"

"बूढ़े हो गये हैं, अब भला कितने दिन और जियेंगे?" किसान ने कहा।

"कितनों को ही मौत उठा ले गई, पर इनको मौत नहीं आई इस ज़िन्दगी में। मैं भला कब सुख पाऊँगी?" किसान की पत्नी ने खरी-खोटी सुनाई।

"जब तक जीते हैं, जीने दे। क्या करें? क्या अपने हाथों उन्हें मार दूँ?" किसान ने पूछा।

"अगर मार दें तो? उनके जीने से न हमें फ़ायदा है, न उन्हें ही।" पत्नी ने गम्भीरता से कहा।

किसान को पहले पहल पिता को अपने हाथों मार देना बहुत बुरा लगा। परन्तु

पत्नी के लगातार कहने पर उसे यह काम कोई ख़ास बुरा नहीं लगा।

आख़िर किसान ने अपने पिता को मारने का एक उपाय सोचा। उसने पिता के पास जाकर कहा-"पिताजी! मैं पासवाले गाँव में उधार लेने की सोच रहा हूँ। वे बिना आपके वहाँ गये, उधार नहीं देना चाहते। आइये, गाड़ी में चलें।"

बूढ़े ने उसका विश्वास कर लिया और उसके साथ गाड़ी में चल दिया। कमल तो एक घड़ी भी बाबा के बग़ैर नहीं रह पाता था। दूसरों के मना करने पर भी वह गाड़ी में बाबा के साथ बैठ गया।

किसान पिता और पुत्र को गाड़ी में चढ़ाकर गाड़ी हाँकने लगा। रास्ते में एक छोटा-सा जङ्गल पड़ता था। किसान ने जङ्गल के बीचों-बीच गाड़ी रोकी। गाड़ी में रखा फावड़ा उठाकर वह पेड़ों के बीच में चला गया।

कमल भी एक फावड़ा लेकर, पिता के पीछे चला। कुछ दूर जाने के बाद कमल ने पिता को एक पेड़ के पास गढ़ा खोदते देखा। कमल भी उस पेड़ के दूसरी तरफ़ पहुँच गया और वहाँ एक गढ़ा खोदने लगा।

किसान खोदने का शब्द सुन, पेड़ के परली तरफ़ गया और वहाँ पुत्र को देख कर आश्चर्य से उसने पूछा-"तू यहाँ गढ़ा क्यों खोद रहा है?"

कमल ने पिता की ओर देखकर कहा-"तुम जिस लिये खोद रहे हो, उसी लिये।"

"क्या तुझे मालूम है, मैं किस लिये खोद रहा हूँ?" किसान ने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम। तुम क्यों वह गढ़ा खोद रहे हो?" कमल ने पूछा।

"अपने पिता को गाड़ देने के लिये। उनके मरने पर गाड़ देने की जिम्मेवारी मुझ पर ही है न ?" किसान ने कहा।

"पर वे तो अभी जी रहे हैं।" कमल ने कहा।

"भला ये प्राण शाश्वत हैं?" किसान ने पूछा।

"अगर मेरा पिता मर गया तो उसको गाड़ देने की जिम्मेवारी भी मुझ पर है। क्या तुम्हारे प्राण शाश्वत हैं?" कमल ने कहा।

किसान को ऐसा लगा, जैसे किसी ने उसके सिर पर चोट मारी हो। वह शर्मिन्दा हुआ, और फावड़ा उठाकर उसने कहा-"आओ, चलें।" कमल भी पिता के साथ चल दिया।

किसान घर वापिस चला आया। इस बीच में, कमल की माँ ने, यह सोचकर कि उसका ससुर मर गया है, पति और पुत्र के लिये खूब स्वादिष्ट पकवान बनाकर तैयार कर रखे थे।

जब उसने गाड़ी में ससुर को बैठा देखा तो वह निराश हो गई। किसान ने पत्नी से जो गुज़रा था, कह सुनाया। कमल की करतूत सुनकर माँ बड़ी नाराज हुई।

"उसे हम कितने ही लाड़ से पाल-पोस रहे हैं। इस तरह पिता के लिये गढ़ा खोदने की उसकी हिमाकत? उसका मुँह कैसे देखूँ?" उसने पति से कहा।

"क्या मेरे पिता ने मुझे प्यार से नहीं पाला था? अगर आज हमारे लड़के ने यह किया है तो इसलिये नहीं कि वह हमें चाहता नहीं है। हमें हमारी गलती दिखाने के लिये उसने ऐसा किया है।" किसान ने कहा।

उसके बाद, कमल के माँ-बाप ने, वैसे नीच कार्य करने की कभी सोची तक नहीं।

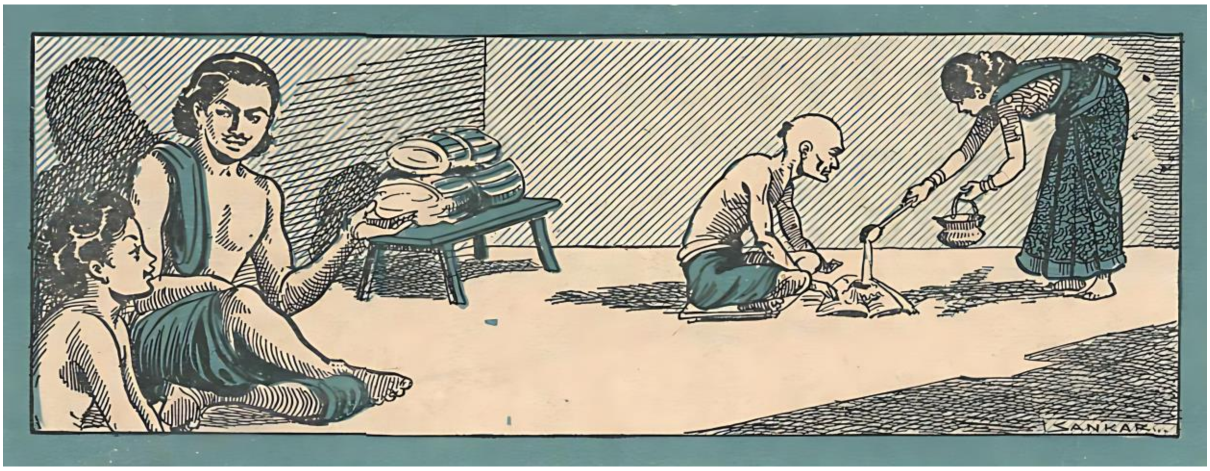

[३]

[निहत्थे मन्दरदेव को बाँधकर ले जानेवाले, दोनों बागी अङ्ग-रक्षक, यकायक बिजली गिरने के कारण मर गये थे न? बाद में, मन्दरदेव और उसके सौनिकों को कुण्डलिनी के घुड़सवारों ने घेर लिया था। घमासान लड़ाई हुई। मन्दरदेव के हाथ कई सारे मारे गये, और जो बचे, वे क़िले की ओर भाग गये। आगे-]

मन्दरदेव की शक्ल-सूरत से ऐसा लगता था, जैसे वह किसी कठिन समस्या के बारे में माथा-पच्ची कर रहा हो। सैनिक भी यह ताड़ गये। वह कभी समुद्र की तरफ देखता, कभी क़िले की ओर। फिर यकायक उसने एक आह भरी। सैनिक यह सोच रहे थे कि क्यों राजा चिन्तित हैं कि इस बीच में मन्दरदेव ने कहा-

"जितनी जल्द हो सके, उतनी जल्द इस द्वीप को छोड़कर जाने में ही हमारा भला है। ये बचे-खुचे कुण्डलिनी देश के घुड़सवार ज़रूर हमारी ख़बर अपने सरदार तक पहुँचायेंगे। वे तुरन्त हमारा पीछा करने के लिये निकल पड़ेंगे। इन छोटी से नावों में, इस बड़े समुद्र में, हमें द्वीपों की तलाश में भटकना होगा। न जाने हमें कहाँ कहाँ जाना होगा? क्या तुम चारों भी मेरे साथ इस द्वीप को छोड़ने की सोच रहे हो?

यह सुन चारों सैनिकों ने एक साथ कहा-"हुजूर, हम आप के ही सहारे,

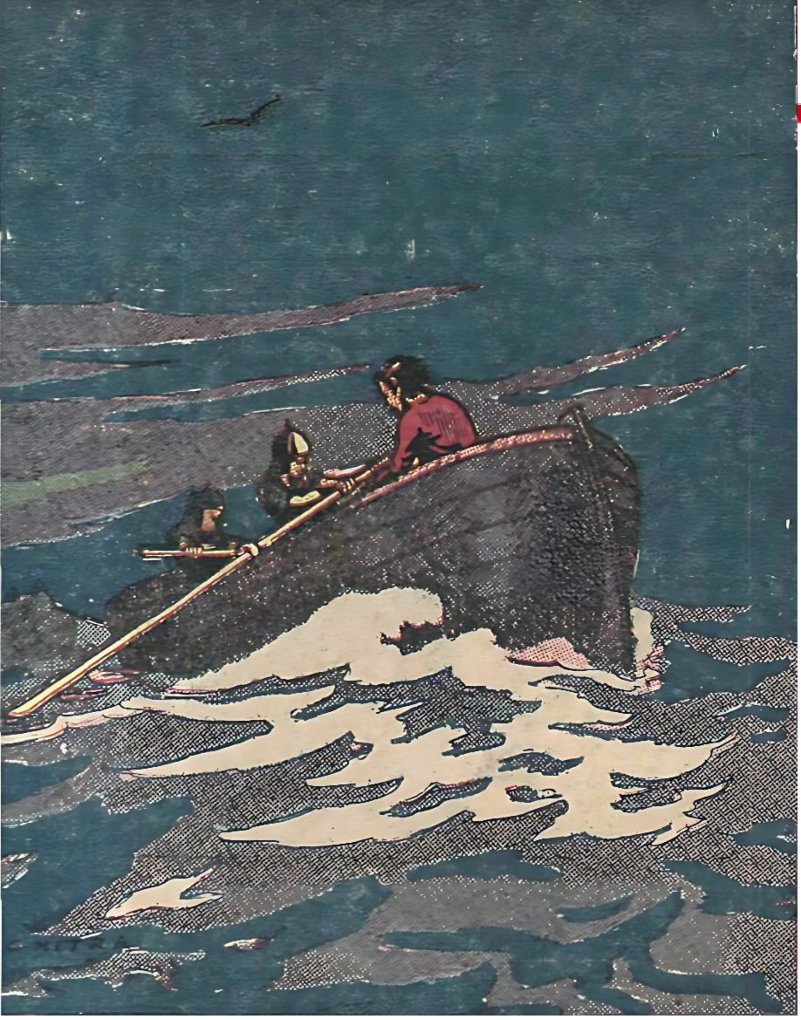

आप के आश्रय में इतने दिनों से रहते आये हैं। इस समय आपको अकेले छोड़कर जानेवाले विश्वासघाती हम नहीं हैं।" मन्दरदेव ने सैनिकों की राज-भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा-

"मुझे तुम्हारी राज-भक्ति पर सन्देह नहीं है। मैं अविवाहित हूँ, कोई मेरा ख़ास सम्बन्धी भी नही हैं। सिवाय इस नरवाहन मिश्र को मारने के, अब मेरे जीवन का कोई उद्देश्य भी नहीं है। जो बिना किसी घोषणा के मेरे राज्य पर हमला करता है, उस व्यक्ति को मेरे बदले का शिकार होना ही चाहिये। उससे बदला लिये बगैर मुझे चैन न मिलेगी। पर तुम सब तो शादी-शुदा हो, बाल-बच्चेवाले हो।" अभी मन्दरदेव कह रहा था कि इस बीच में सैनिक बोल उठे-"महाराज, हमें इस प्रकार की कोई दिक्कत नहीं है। हमारी एक ही इच्छा है कि कष्ट और सुख में, हम आपके साथ ही रहें।"

मन्दरदेव मुस्कुराया, उसकी आँखों में तरी आ गयी। उनका वात्सल्य देख उसने कहा-"अच्छा, अब हमें देरी नहीं करनी चाहिये। कश्ती पर चढ़ो।"

दोनों नौकायें, बड़ी रस्सियों से किनारे पर गढ़ी खूँटिये से बन्धी हुई थीं। सैनिकों ने रस्सियाँ खोलीं। घुटने भर पानी में से होते हुए वे नौकाओं में बैठ गये। एक कश्ती में राजा और दो सैनिक थे, और दूसरी किश्ती में शेष दो सैनिक।

किश्तियाँ कल्लोलित समुद्र को चीरती हुई चली जाती थीं, सैनिक चप्पू चलाते जाते थे। तब तक तूफ़ान शान्त हो चुका था। बादल भी तितर-बितर हो गए थे। बिजली भी नहीं गरज रही थी। थोड़ी बहुत रिमझिम ज़रूर हो रही थी। सूर्य छुप चुका था। अन्धेरा छा रहा था, और

पेड़ों के झुरमुट में से चन्द्रमा निकलने का प्रयत्न कर रहा था।

कश्तियाँ समुद्र में बहुत दूर चली गईं। कोई भी यह नहीं सोच रहा था कि कहाँ जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं? मन्दरदेव और उसके सैनिक सोच रहे थे-"चाहे कहीं भी जायें, जब तक हम नरवाहन मिश्र के हाथों में नहीं पड़ते, तबतक सब ठीक है।" समुद्र में वे चार-पाँच घण्टों से सफ़र कर रहे थे। तब उन्हें दूरी पर लहरों पर टिमटिमाती रोशनी दिखाई दी। वे मछियारों की नौकायें नहीं लगती थीं। इस तूफानी समुद्र में, इतनी दूर, मछलियों को पकड़ने के लिये कोई मछियारा नहीं निकल सकता था। कहीं ऐसा तो नहीं कि नरवाहन मिश्र नौकाओं में उनका पीछा कर रहा हो।

ज्यों ही मन्दरदेव के मन में यह सन्देह पैदा हुआ, त्यों ही वह घबड़ाता हुआ, नाव में खड़ा हो गया। वह रोशनी धीमे धीमे उसी तरफ़ आ रही थी। जब गौर से देखा तो दो मामूली-न बड़ी, न छोटी, नौकायें थीं।

इस तुफानी समुद्र में, हो सकता है, हमें एक और युद्ध करना पड़े।

अगर यह रोशनी हम जैसे, जान बचाकर भागनेवालों की नावों की है तो कोई फ़िक्र की बात नहीं। अगर ऐसी बात नहीं है तो ज़रूर ये कुण्डलिनी द्वीप की नौकायें हैं। क्या किसी के पास बाण हैं?" मन्दरदेव ने पूछा। एक सैनिक ने तुरन्त जवाब दिया-"महाराज! हमारे पास तलवार के सिवाय कुछ नहीं है।"

"कोई बात नहीं।" मन्दरदेव ने कहा। "यदि मराल देवी के कृपा हम पर रही, तो ये तलवारें ही काफ़ी हैं। अगर एक बार जान ही चली गई तो क्या

हुआ? चाहे यह शरीर समुद्र की मछलियों के लिये आहार हो जाय, या ज़मीन की कृमि- कीटकों के लिये भोजन बन जाय; दोनों ही बराबर है।

मन्दरदेव की ये बातें सुन सैनिकों का हौसला बढ़ा। इस बीच में नावों की टिमटिमाती रोशनी पास आती जाती थी। जब वे नौकायें साफ़ दीखने लगीं, तो एक कश्ती में, एक हट्टा-कट्टा लम्बा आदमी धनुष लेकर खड़ा हो गया। चन्द्रमा के प्रकाश में, भले ही उसका मुख स्पष्ट न दीखता हो, पर इतना ज़रूर मालूम होता था कि वह आदमी दीर्घ काय था, बलवान नज़र आता था।

"अब सन्देह की गुञ्जाइश नहीं। ये धनुष-बाणों के साथ तैनात होकर आये हैं। जब तक हम उनके पास नहीं पहुँच जाते हैं, हमारे लिये यही अच्छा है कि हम नीचे झुककर बैठ जायँ, ताकि बाण न लगें।" अभी मन्दरदेव यह कह ही रहा था कि एक बाण सनसनाता हुआ उसकी नाव पर लगा। तुरन्त मन्दरदेव और सैनिक कश्ती के भीतर चले गये और सिर छुपाकर बैठ गये।

बैठे बैठे, मन्दरदेव और उसके सैनिकों को उनकी आपस की बातचीत और तेज़ी से चप्पू का चलाना, सब सुनाई दे रहा था। वे जान गये थे कि शत्रु उनका बड़ी तेज़ी से पीछा कर रहे हैं। जब तक शत्रु बहुत पास नहीं आ जाता, तब तक उन्हें इसी तरह बैठना था। पास आने पर आमने-सामने, तलवार के पैंतरे चलेंगे और जिसकी जैसी किस्मत होगी, वैसा होगा।

इस तरह प्राण मुट्ठी में रख मन्दरदेव और उसके सैनिक सोच रहे थे कि उन्हें "जय समरसेन" का भीकर जय जयकार सुनाई दिया। यह जय जयकार सुनकर, आश्चर्य चकित हो मन्दरदेव उठना ही चाहता था कि कोई नाव उसकी नाव से टकराई, और नाव उलटते उलटते बची। मन्दरदेव झट तलवार लेकर खड़ा हो गया। उसकी "जय मारली " की ललकार समुद्र में गूँजने लगी। उसी समय उसकी तलवार एक शत्रु को लगी और वह कराहता हुआ समुद्र में जा गिरा और ज़ोर से ललकारते हुये मन्दरदेव के सैनिक सामनेवाली नौका में कूद पड़े।

"ठहरो, ठहरो, हम शत्रु नहीं है।" यह सुन सब के सब चौकन्ने खड़े हो गये। पर तब तक दो और सैनिक, मन्दरदेव के सैनिकों की तलवारों के शिकार हो चुके थे, और समुद्र में लुढ़काये जा चुके थे। दो एक घायल पड़े थे।

मन्दरदेव ने तलवार उठाकर पूछा- "तो आप कौन हैं? क्या आप नरवाहन मिश्र के सैनिक नहीं हैं?"

"हम भी कुण्डलिनी देश के निवासी हैं। परन्तु नरवाइन मिश्र हमारा जानी दुश्मन है। अगर आप मरालद्वीप के रहनेवाले हैं तो हम सब मित्र हैं। तलवारें म्यान में रखिये।" एक हट्टे कट्टे नौजवान ने कहा।

मन्दरदेव सोचने लगा कि यह कोई चाल तो नहीं है? पर अपने को काबू में रखते हुए उसने पूछा- "तो आपका सरदार कौन हैं? उनका क्या नाम है?"

"मेरा नाम शिवदत्त है। ये सब मेरे अनुयायी हैं।" यह जवाब मिला।

"स्वागत है आपका शिवदत्त! स्वागत।" मन्दरदेव ने बड़े उत्साह के साथ कहा। "आज से कोई बीस बरस पहले जब मेरी उम्र दस वर्ष के क़रीब होगी, आपका और कुण्डलिनी के महासेनानी समरसेन का नाम सुना था। आप दोनों ने भयङ्कर द्वीपों में जो साहसपूर्ण कार्य किये थे, उनकी कहानियाँ भी मैंने चाव से सुनी थीं। अब मुझे उस महा सेनानी के मुख्य अनुयायी को देखने का सौभाग्य मिला है, स्वागत है।"

"आप कौन हैं? कहीं आप मराल द्वीप के राजा मन्दरदेव तो नहीं हैं?" शिवदत्त ने पूछा।

"हाँ! पाँच छः घण्टे पहले तक मराल द्वीप का राजा मन्दरदेव ही था। पर अब

मैं केवल मन्दरदेव ही रह गया हूँ। मेरा राज्य, मेरा मुकुट, सब नरवाहन मिश्र के हाथ में चला गया है।" मन्दरदेव ने कहा।

शिवदत्त ने कोई जवाब न दिया। उसके अनुयायियों की दोनों नौकायें, मन्दरदेव की नौकाओं से सटकर खड़ी हो गयीं। शिवदत्त मन्दरदेव की नौका में चला आया। यह सोचकर कि वह उससे कुछ कहने आया है, मन्दरदेव ने अपने पास बग़ल में उसको बैठने की जगह दे दी।

शिवदत्त ने पास बैठते हुए कहा-"हाँ, यह ज़रूर है कि राज्य के जाने पर राजा की उपाधियाँ भी चली जाती हैं। आपको मैं मन्दरदेव कहकर ही पुकारूँगा। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि आपका गम्य-स्थान क्या है?"

मन्दरदेव के मुँह से सहसा एक आह निकली, फिर उसने मुस्कराते हुए कहा-"मेरा गम्य-स्थान क्या है, यह मैं स्वयं ही नहीं जानता हूँ। फ़िलहाल मेरा काम केवल इतना ही है कि नरवाहन मिश्र से पीछा छुड़ाकर कहीं चला जाऊँ, और उसके हाथ में न पड़ूँ। यही मेरा इरादा है।"

"बिल्कुल ठीक है। हम दोनों एक जैसी ही हालत में हैं। मैं भी उस दुष्ट से पिण्ड छुड़ाने के उद्देश्य से चल निकला हूँ।" शिवदत्त ने कहा।

इतने में मन्दरदेव के सैनिकों में से एक सैनिक ने उठकर कहा-"महाराज! किनारे की तरफ़ देखिये। इतनी सारी रोशिनियों का एक ही समय हिलना देख कर आश्चर्य होता है। मेरा ख्याल है कि वे सब जहाज़ ही हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि शत्रु हमारा पीछा करने के लिये निकल पड़े हों? यही हो सकता है।"

शिवदत्त और मन्दरदेव ने किनारे की ओर देखा। सैनिकों का कहना ठीक ही था। सारा का सारा किनारा रोशनी से जगमगा रहा था। पाल, और मस्तूल, जगमगाते जहाज़ों में इधर उधर हिल रहे थे।

"जहाँ तक हो सके, वहाँ तक सीधे समुद्र में चले जाने में ही हमारा फ़ायदा है। अगर भाग्य अच्छा रहा तो किसी द्वीप में पहुँच जायेंगे, नहीं तो देखा जायेगा। किसी भी हालत में नरवाहन मिश्र के हाथ में पड़ जाना अच्छा नहीं है।" शिवदत्त ने कहा।

मन्दरदेव ने सिर हिलाकर स्वीकृति की सूचना दी। चारों नौकाओं में चप्पू चलने लगे। वे महासमुद्र में फिर निकल पड़े। जैसे उन्होंने अनुमान किया था, किनारे पर दिखाई देनेवाली रोशनी नरवाहन मिश्र के नौका-दल की ही थी। उनको पीछा करता देख, शिवदत्त ने अपनी नौकाओं की रोशनी बुझा दी।

अब चारों नौकायें, अन्धेरे में चली जा रही थीं। कहीं ऐसा न हो कि वे नौकायें चलते चलते आपस में ही टकरा जायें, वे सावधानी से नौकायें खेते जा रहे थे। मन्दरदेव ने आकाश में झिलमिल करते हुए तारों की ओर देखकर कहा-

"शिवदत्त! कुण्डलिनी द्वीप के वासी, और महासेनानी समरसेन के अनुयायी होने पर भी आपको अपना देश छोड़कर क्यों भागना पड़ा? मुझे इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा हैं।"

शिवदत्त ने एक क्षण सोचकर कहा- "यह सब इस नरवाहन मिश्र की कुटिल चाल का ही फल है। पर इसमें थोड़ी समरसेन की गलती भी है। सुनिये।"

[अभी और है]

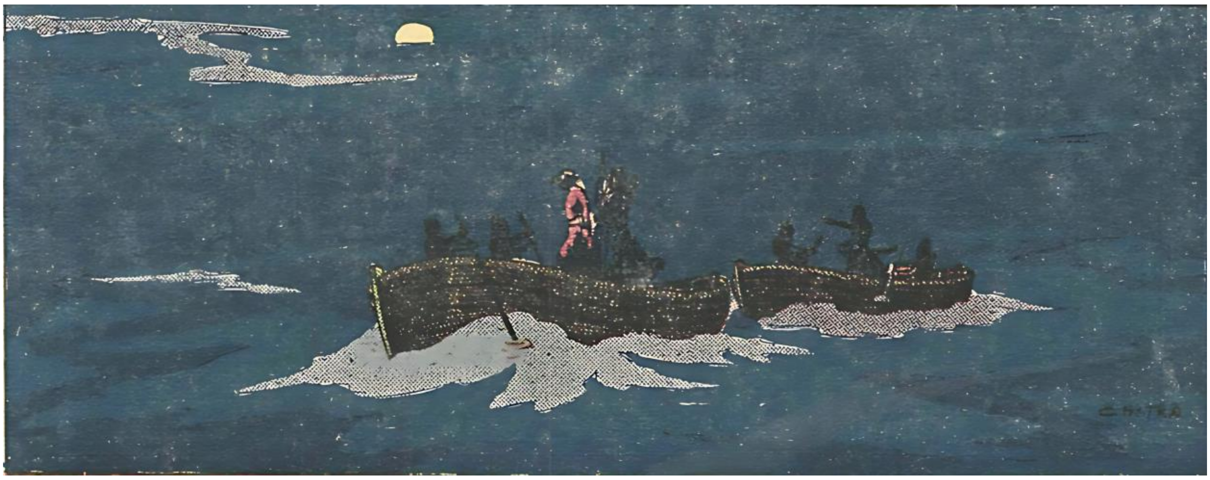

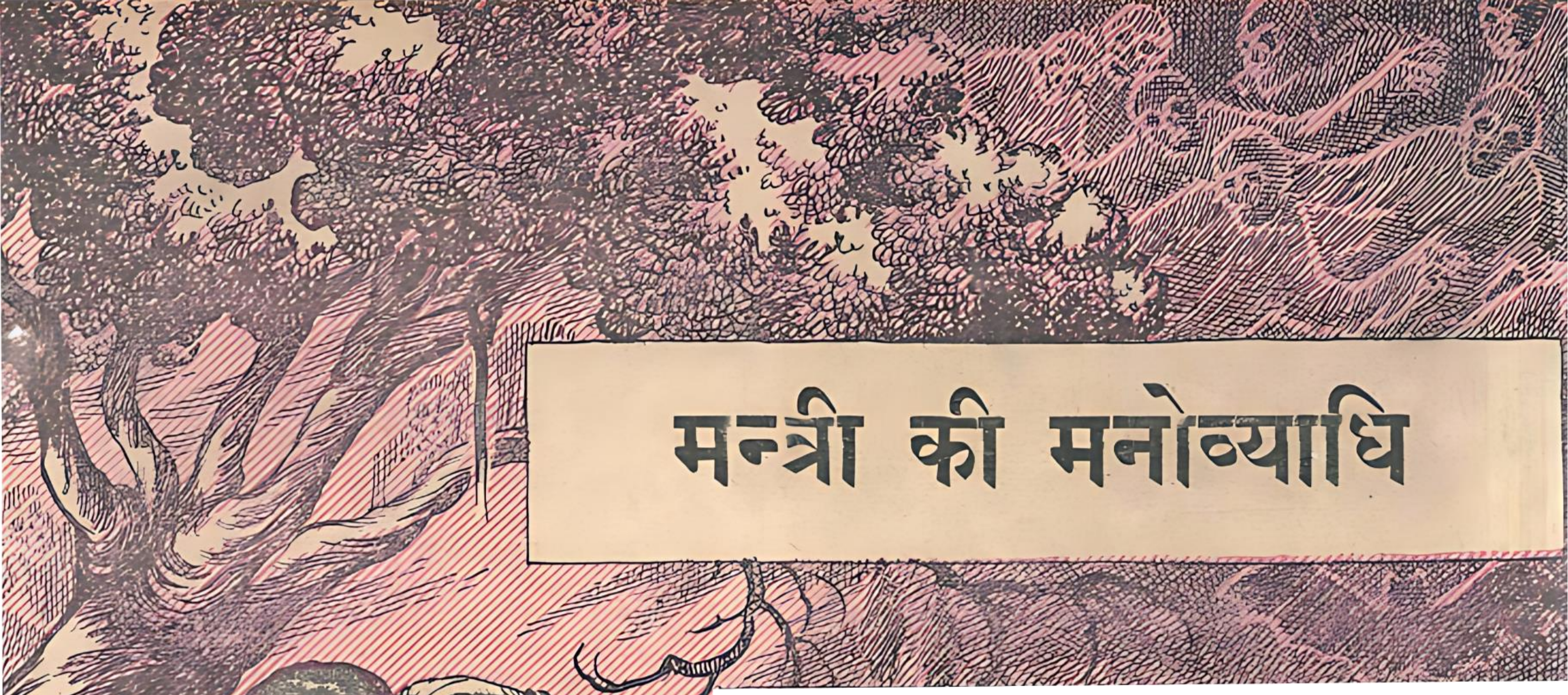

मन्त्री की मनोव्याधि

किसी ज़माने में, गोदावरी के किनारे स्थित प्रतिष्ठान राज्य पर विक्रम राज्य करता था। एक दिन उसके दरबार में शान्तिशील नाम का एक भिक्षु आया। उसने उसको एक फल भेंट में दिया। राजा ने उस फल को अपने पालतू बन्दर को दिया। बन्दर ने ज्यों ही उस फल को काटा तो उस में से एक रत्न बाहर निकल आया। वह देख विक्रम चकित हुआ। "आप मुझ से क्या सहायता चाहते हैं?" राजा ने भिक्षु से पूछा।

"राजन्! मैं मन्त्र-तन्त्र सीखने की साधना कर रहा हूँ। उस साधना को पूर्ण करने के लिये एक महावीर की सहायता चाहिये। इस संसार में आपसे बढ़कर कौन महावीर हो सकता है ?"

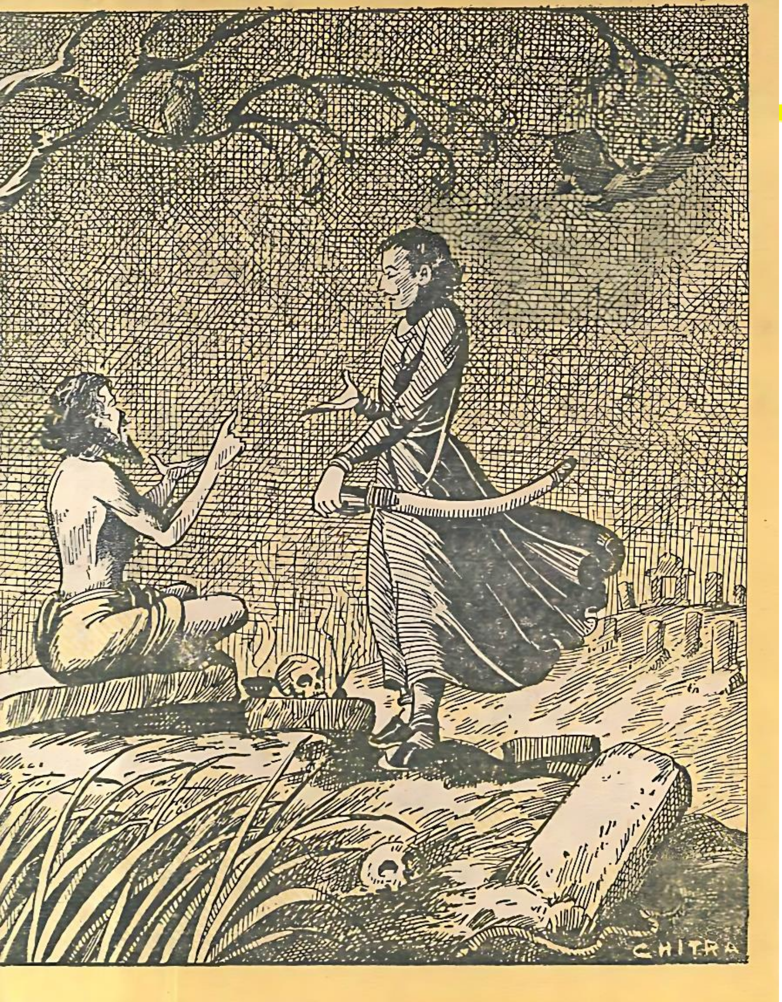

"आप किस प्रकार की सहायता चाहते हैं?" राजा ने पूछा।

"अगर आगामी कृष्ण चतुर्दशी के दिन आप श्मशान में आ सकें तो वहाँ बढ़ के पेड़ के नीचे मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँगा। तब मैं आपको बताऊँगा कि मुझे कैसी सहायता चाहिये।" भिक्षु ने कहा।

राजा मान गया। कृष्ण चतुर्दशी के दिन आधी रात को, काले कपड़े पहनकर, तलवार ले, वह श्मशान में जाकर, भिक्षु से मिला।

"राजन्! यदि दक्षिण की ओर गये तो वहाँ आपको एक पीपल का पेड़ दिखाई देगा। उस पर एक शव लटकता हुआ दिखाई देगा। आप चुपचाप उस शव को पेड़ पर से उतार कर यहाँ ले आइये।" भिक्षु ने कहा।

विक्रम दक्षिण की ओर गया और उसने पीपल के पेड़ पर शव देखा। पेड़ पर चढ़कर शव जिससे बँधा हुआ था, उस रस्सी को उसने अपनी तलवार से काट दिया। शव धड़ाम से नीचे गिरा, और नीचे गिरते ही वह शव रोने लगा। राजा को आश्चर्य हुआ। वह पेड़ पर से उतर आया, और शव को गौर से देखने लगा। तुरन्त शव हँसने लगा।

राजा ताड़ गया कि शव में कोई बेताल है। "क्यों हँसते हो? चलो चलें।" राजा के मुँह से यह बात निकलनी थी कि शव झट फिर पेड़ पर जा चढ़ा और टहनी पर से पहले की तरह लटकने लगा।

राजा फिर पेड़ पर चढ़ा, उसने शव को उतारा, और उसको कन्धे पर रख, चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा।

तब शव के वेताल ने राजा विक्रम को यह कहानी सुनानी शुरु की -"राजा! अफ़सोस है कि तुम्हें बोझ ढोना पड़

रहा है। मैं तुम्हें एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूँ, सुनो।"

यशकेतु नाम का राजा अङ्ग देश का राज्य करता था। उसका एक मन्त्री था, जिसका नाम दीर्घदर्शी था। चूँकि यशकेतु हमेशा अन्तःपुर में, भोग-विलास में मस्त रहता, इसलिए राज्य का सारा भार मन्त्री दीर्घदर्शी पर आ पड़ा था और यद्यपि दीर्घदर्शी बहुत सावधानी और न्यायपूर्ण पद्धति से राज्य कर रहा था, फिर भी बुरा-भला कहनेवाले उसको बुरा भला कहते ही थे। वे कहा करते कि राजा को भोग-विलास में डालकर वह स्वयं राजा बन बैठा है। यह सुन दीर्घदर्शी को बहुत दुःख होता। उसने राजा के पास जाकर कहा- "महाराज, मैं तीर्थ-यात्रा पर जा रहा हूँ। आप अब अपना राज्य स्वयं ही देखिये।" राजा ने उससे बहुत कहा कि वह तीर्थ-यात्रा पर न जाये, परन्तु दीर्घदर्शी न माना और वह अपनी यात्रा पर चला गया।

थोड़े दिन सफ़र करने के बाद वह एक गाँव में पहुँचा। वहाँ उसकी एक व्यापारी से जान -पहचान हो गई। वह व्यापारी समुद्र पार देशों से व्यापार करता था।

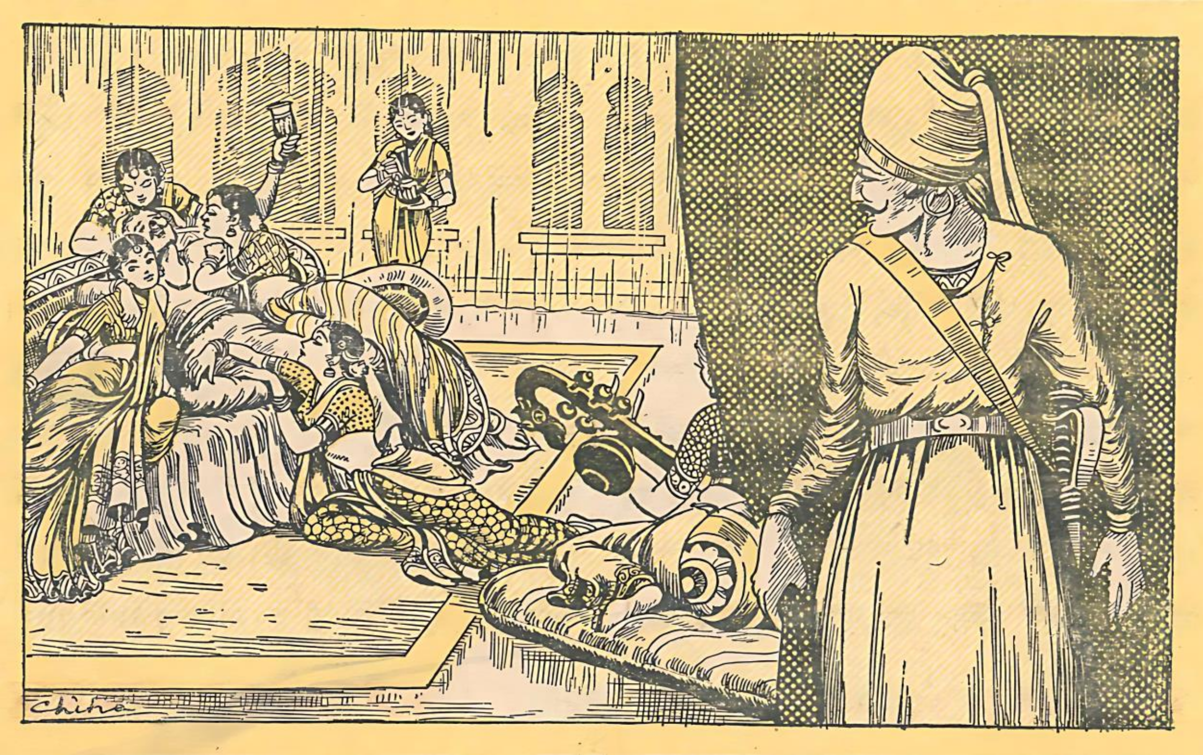

"मैं आज जहाज़ों में माल लादकर स्वर्ण-द्वीप जा रहा हूँ। आप भी मेरे साथ चलिये।" व्यापारी ने दीर्घदर्शी के सामने अपनी इच्छा प्रकट की। वह मान गया।

जब वे स्वर्ण-द्वीप से वापिस आ रहे थे तो एक दिन दीर्घदर्शी को समुद्र में एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई दिया। समुद्र की लहरों में से एक बड़ा वृक्ष ऊपर निकला। उस पर एक बहुत ही सुन्दर स्त्री वीणा बजाती हुई दिखाई दी। देखते देखते वह दृश्य अदृश्य भी हो गया। नाविकों ने दीर्घदर्शी को चकित देखकर कहा-"यह दृश्य, इस प्रान्त में हमें हर बार दिखाई देता है, महाराज।"

थोड़े दिनों बाद दीर्घदर्शी अङ्ग देश वापिस पहुँचा। मन्त्री को देखते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ। मन्त्री के जाने के बाद राजा यह भूल गया था कि मनः शान्ति किसे कहते हैं। उसे न आराम था, न चैन ही। "खैर, मन्त्री! तुमने संसार में क्या क्या अजीब चीजें देखीं?" राजा ने पूछा।

"महाराज! जब मैं एक व्यापारी के साथ स्वर्ण-द्वीप जाकर वापिस आ रहा था तो समुद्र में मैंने एक अत्यन्त सुन्दर, अद्‌भुत युवती को देखा। वह कोई अप्सरा होगी। मेरे देखते देखते वह अदृश्य हो गई।" दीर्घदर्शी ने कहा।

यह सुनते ही राजा उस स्त्री को देखने के लिये उतावला हो गया। मन्त्री ने बहुत समझाया बुझाया। पर राजा राज्य-भार मन्त्री पर डाल, स्वयं यात्रा पर निकल पड़ा। समुद्र के किनारे पर पहुँचने के कुछ दिनों बाद ही, उसे स्वर्ण-द्वीप की ओर जानेवाला एक जहाज़ मिल गया। राजा ने उस जहाज़ के व्यापारी से मैत्री कर ली, और जहाज़ में यात्रा करने लगा।

कुछ दिनों बाद, समुद्र में राजा को भी एक वृक्ष दिखाई दिया, जिस पर एक स्त्री वीणा बजा रही थी। यह देखते ही, राजा ने न पीछे देखा, न आगे। वह समुद्र में कूद पड़ा।

समुद्र की तह में राजा को एक महानगर दिखाई दिया। उसे कहीं भी कोई प्राणी न दिखाई दिया। परन्तु, वह अपनी ज़िद में घूमता गया। अन्त में वह एक विशाल भवन में पहुँचा। उसे एक कमरे में हँसों के पंखों की गद्दी पर एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री दिखाई दी। राजा ने उसे देखते ही पूछा-"तू कौन है? और इस निर्जन जगह पर तू अकेली क्या कर रही है?"

"राजा, मैं गन्धर्व स्त्री हूँ। मेरा नाम मृगाङ्कवती है। मेरा पिता मुझे प्रेम करता था। अगर मैं साथ न होती तो कभी भोजन न करता। मैं प्रति अष्टमी और चतुर्दशी के दिन गौरी पूजा करने जाया करती थी। एक बार पूजा में मग्न होकर मैं शाम तक घर न गई। तब तक मेरे पिता ने भोजन न किया। इस पर उसको गुस्सा आ गया और शाप दिया कि मैं निर्जन नगर में रहूँ।" उस स्त्री ने कहा।

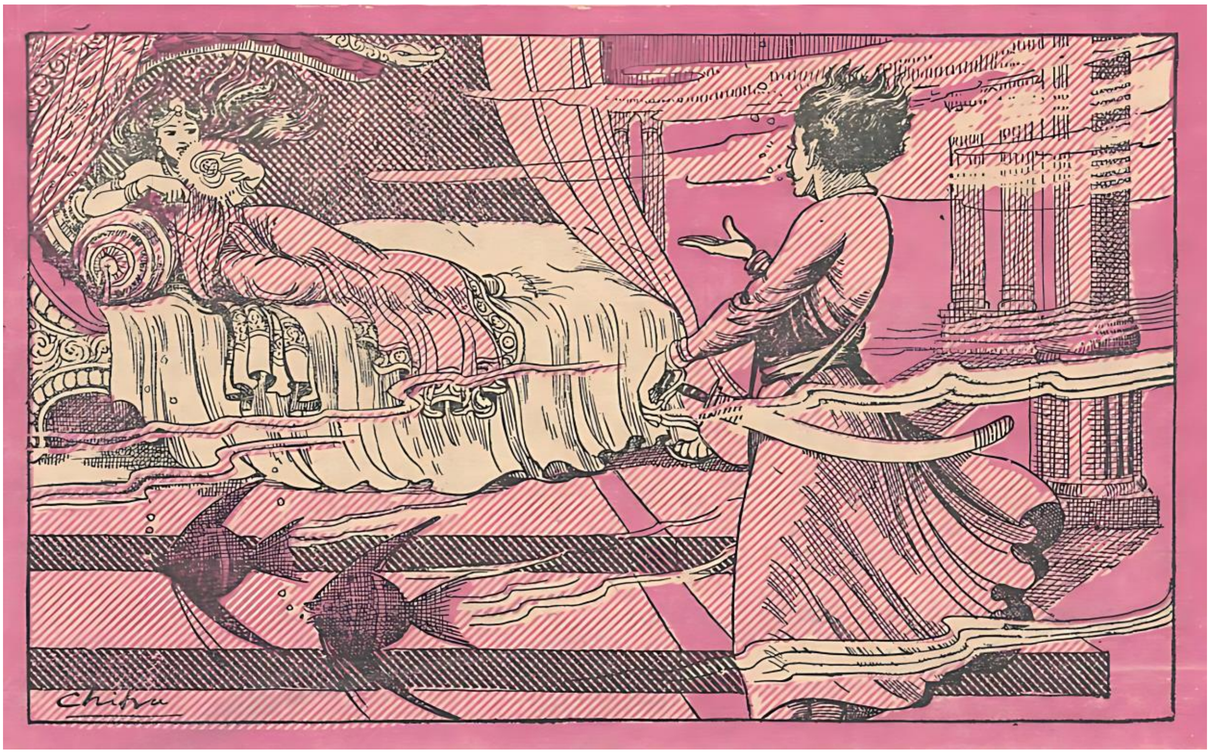

"जो गुज़र गया है, उसकी फ़िक्र न कर। मैं तुझ से बिना विवाह किये जीवित नहीं रह सकता। हम दोनों विवाह करके यहीं रहेंगे।" राजा ने कहा।

तुम से शादी करने के लिये मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु एक बात का ख्याल रखो। मुझे मेरे पिता ने गुस्से में शाप तो दे दिया था; परन्तु मेरे मनाने पर उसने शाप से विमुक्त होने का मार्ग भी बता दिया था कि यदि मुझ से विवाह कर कोई सात दिन मेरे साथ रहे तो मैं शाप-विमुक्त हो जाऊँगी और मैं गन्धर्व लोक में अपने पिता से फिर मिल सकूँगी। कोई न कोई तो मुझे शाप से विमुक्त करेगा, यह सोचकर मैं समुद्र पर दिखाई देती थी। इतने दिनों बाद, आज सौभाग्य से तुम आ मिले।" मृगाङ्कवती ने कहा।

राजा ने बड़े प्रेम से कहा-"अगर तू मेरी पत्नी एक क्षण के लिये भी बन जाय तो मैं धन्य हूँ।"

मृगाङ्कवती को राजा पर अत्यधिक प्रेम होने लगा। आँगन में एक कुआँ दिखा कर उसने कहा-"इस सप्ताह भर में तुम भूलकर भी इस कुएँ में न उतरना। उतरें कि नहीं तुम अगले क्षण भूलोक में होगे। तुम्हारे बिना मैं इस शून्य नगर में एक क्षण भी नहीं रह सकती।"

समुद्र की तह में बसे हुए उस शून्य नगर में, मृगाङ्कवती के साथ, वहाँ की अज़ीब चीजें देखते देखते यशकेतु ने मज़े में एक सप्ताह काट दिया।

"राजा! अब मेरा अपने लोक में जाने का समय आ गया है। मैं तुम्हारा प्रेम, स्नेह कभी न भूल सकूँगी, हमेशा याद रखूँगी। अब मुझे जाने दो।" कहती हुई मृगाङ्कवती राजा को कुएँ के पास लाई।

राजा जाना न चाहता था। उसने मृगाङ्कवती से कहा-"कुछ दिन, मेरे साथ, मेरे नगर में क्यों नहीं रह जाती?"

"राजा! मैं भूलोक में गई तो मैं मानव कन्या हो जाऊँगी।" मृगाङ्कवती ने कहा।

राजा उसकी तरफ इस तरह गया, जैसे उससे विदा लेने जा रहा हो; परन्तु उसको ज़ोर से पकड़कर उसके साथ वह कुएँ में कूद पड़ा। दूसरे क्षण दोनों भूलोक पहुँचे। मृगाङ्कवती स्त्री हो गई। राजा उसको अङ्ग देश ले गया और एक दिन उसके साथ बड़े वैभव के साथ उसने विवाह कर लिया। उसी दिन अङ्ग देश का मन्त्री दीर्घदर्शी, हृदय-स्पन्दन के रुक जाने से मर गया।" यह कहानी सुनाकर वेताल ने पूछा- "राजा! यह बताओ, दीर्घदर्शी क्यों मरा? क्या इसलिये कि गया हुआ राजा वापिस आकर उसके राज्य में विघ्न डाल रहा था? क्या इसलिये कि जिस सुन्दर स्त्री को उसने देखा था, उस सुन्दर स्त्री से राजा ने विवाह कर लिया था? अगर तुमने इन प्रश्नों का ठीक उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"दीर्घदर्शी तुम्हारे बताये हुये कारणों की वजह से मरा ही न था। जब राजा भोगों में मस्त था, तभी उसने दीर्घदर्शी को राज सौंप दिया था। इस कारण दीर्घदर्शी की निन्दा हुई थी, और अब वह एक अप्सरा के साथ शादी करके आया था। अतः अब वह फिर उस पर राज्य भार डाल देता, दीर्घदर्शी की लोगों में और निन्दा होती- यह सोचकर ही दीर्घदर्शी का हृदय-स्पन्दन रुक गया था।" विक्रम ने वेताल के प्रश्न का उत्तर दिया। इस तरह राजा के चुप्पी टूटने पर वेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और जाकर फिर पेड़ पर चढ़ गया।

चिरपुर राज्य पर चिरदाता नाम का राजा राज्य किया करता था। वह स्वयं बहुत अच्छा था; पर उसको हमेशा धूर्त, और चालाक आदमी घेरे रहते।

प्रसङ्ग नाम का एक व्यक्ति अपने दो मित्रों के साथ चिरपुर पहुँचा। राजा के महल में तीनों को नौकरी मिल गई। वे काम भी करने लगे। बहुत दिन बीत गये; परन्तु उन्हें न वेतन दिया गया, न कुछ और ही। जब कभी त्योहार वगैरह आते तो राजा अपने नौकर-चाकरों को रुपया-पैसा, कपड़े आदि देता; परन्तु इनको ये भी न मिलते।

महल में वे खा-पी लेते थे, काम भी करते थे। पर ऐसा नहीं लगता था, जैसे किसी को मालूम हो कि वे नौकर थे, और उनको वेतन दिया जाना चाहिये था। कोई उनको पूछता-पाछता तक नहीं।

"इस तरह हम नौकरी कितने दिन कर सकते हैं? बिना पैसे के हम भला कैसे शादी करेंगे और कैसे गृहस्थी निभायेंगे? हमारी हालत क्या है?" प्रसङ्ग के मित्रों ने पूछा।

"कुछ सब्र करो। राजा दयालु हैं। तुमने देख ही लिया है, हर त्योहार पर वे कैसे रुपये-पैसे की वर्षा करते हैं। उन्हीं के सामने यदि हमने जाकर अपना रोना रोया तो शायद हमारी यह दुर्दशा समाप्त हो।" प्रसङ्ग ने सलाह दी।

उन्होंने राजा के दर्शन के लिये प्रयत्न किया। परन्तु सैनिकों ने राजा के कमरे तक भी उन्हें जाने नहीं दिया। राज- दरबार में भी वे राजा को न देख सके। और तो कहीं देखते ही क्या? प्रसङ्ग और उसके मित्रों ने कई लोगों को अपनी हालत

श्री सुमेरमल जैन

बताई। पर किसी के कान पर भी जूँ न रेंगी। फिर क्या करते?

इस तरह पाँच साल बीत गये। पटरानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने कहा कि युवराज पैदा हुआ है। सारा नगर सजाया गया, उत्सव मनाये गये। रुपया पानी की तरह खर्चा गया। हर आदमी को कपडे, अन्न, फल, पात्र, पैसे वगैरह दिये गये।

परन्तु न तो प्रसङ्ग को, न उसके मित्रों को ही किसी ने भूलकर भी एक दमड़ी न दी, जैसे किसी ने उनको शाप दे रखा हो।

युवराज, तीन दिन जीकर, गुज़र गया। तीन दिन के बच्चे के गुज़र जाने पर कौन भला छाती पीट-पीटकर रोयेगा? राजा महल में शोक ग्रस्त हो बैठा रहा। लोग उनकी पूछताछ करने के लिये गये। इस तरह पूछताछ के लिये जानेवाले लोगों को सिपाहियों ने न रोका। यही मौका देखा प्रसङ्ग और उसके मित्र राजा के पास जाकर छाती पीट-पीटकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगे।

"अरे, अरे! हम तो यह आस लगाये बैठे थे कि आप बड़े होंगे और हमें हमारे वेतन दिलवायेंगे। आप के लिये पाँच साल तक इन्तज़ारी करते रहे। परन्तु इस बीच में हमारी आशाओं पर आप पानी फेर गये। अब हमारी हालत के बारे में कौन पूछेगा? कौन हमारी मदद करेगा?"

उनकी बातें सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। उन्हें पास बुलाकर राजा ने पूछा-"क्या बात है?" उन्होंने अपनी कहानी उसे बता दी। राजा को उन पर दया आई और उसने तुरन्त उनके वेतनादि का प्रबन्ध कर दिया। उनको बकाया वेतन भी दिलवाया गया।

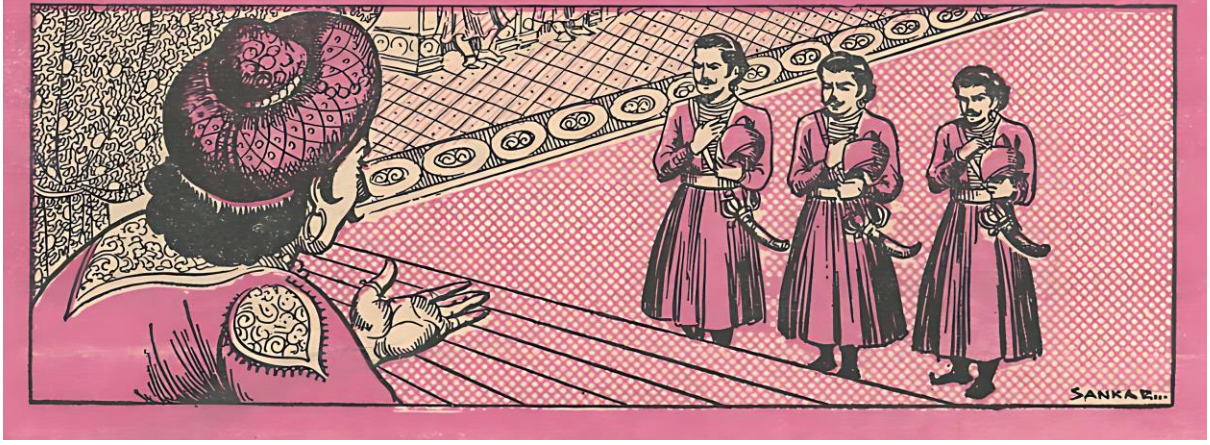

भास्कर और शाकल्य

एक दिन सबेरे सबेरे राजा भोज, गलियों में से होता हुआ, शिवालय की ओर गया। मन्दिर के चबूतरे पर दो ब्राह्मणों को उसने सोते हुए पाया। भोजराज के देखते देखते अधेड़ ब्राह्मण उठा और बग़ल में ही एक नवयुवक ब्राह्मण को सोता देख, उसको आश्चर्य हुआ। उसने कन्धा पकड़ कर उसे उठाया-"तुम कौन हो भाई? सो रहे हो या जाग रहे हो?"

नवयुवक आँखें मलता हुआ उठा- "नमस्ते! बहुत रात गये कल मैं यहाँ आया था। आप मुझे सोते हुए दिखाई दिये। मैं भी यहाँ सो गया।" उसने कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है? कहाँ के रहनेवाले हो?" अधेड़ ब्राह्मण ने पूछा।

"मुझे भास्कर कहते हैं। मेरा गाँव प्रभावती नदी के किनारे है। यह सुनकर कि राजा भोज बहुत बड़े दानी हैं, मैं भी अपनी गरीबी दूर करने के लिये यहाँ चला आया हूँ। पर सौभाग्य से पितृतुल्य आप यहाँ मिल गये। आप मेरी थोड़ी मदद कीजिये।" नवयुवक ने कहा।

"मैं भी राजा भोज के दर्शन के लिये ही आया हूँ। मुझे शाकल्य कहते हैं। मैं कवि हूँ। मैं दक्षिण में, एकशिला नगर का रहनेवाला हूँ। तुम्हें देखकर, ऐसा लगता है, जैसे तुमने बहुत मुसीबतें झेलीं हों।" अधेड़ ब्राह्मण ने कहा।

"क्या कहूँ महाशय? कह भास्कर ने यह श्लोक सुनाया:

क्षुत् क्षामा शिशवः शवा इव भृशं मन्दाशया बान्धवाः

लिप्ता जर्जर, घर्जरी जतुलवनमां तथा बाधते,

गेहिन्या त्रटितांशुकम् घटयुतुं कृत्वा सका कुस्मितम्

कुप्यन्ती प्रतिवेश्मलोक गृहिणी सूचीं यथा याचिता।

श्री प्रयाग नारायण

(बच्चे भूख के कारण शव जैसे लगते हैं। कोई बन्धु सहायता नहीं करता। टूटे-फूटे बर्तनों पर जोड़ लगाकर हम उपयोग कर रहे हैं। पर इनके कारण मैं बाधित नहीं हूँ। जब फटी-पुरानी साड़ी को सीने के लिये, पड़ोस की स्त्री के पास पत्नी सूई माँगने गई तो उसका झुञ्झलाना देख, मेरा हृदय दहल उठा है।)

यह बात एक खम्भे के सहारे खड़ा राजा भोज सुन रहा था। उसका दिल पिघल गया। वे चुपचाप आगे आये, और जो आभूषण उनके शरीर पर थे, उन्हें देते हुए उन्होंने भास्कर से कहा: भास्कर कवि! तुम तुरन्त अपने गाँव जाकर अपनी पत्नी-पुत्रों की देखभाल करो।"

राजा भोज की उदारता देख शाकल्य बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने तुरन्त यह श्लोक बनाकर सुनाया:

अभ्युद्धृता वसुमती, दलितोरि वर्गः

कोडीकृता बलवता बलिराज लक्ष्मीः

एकत्र जन्मनि कृतं यदनेन यूना

जन्मत्रये त दकरोत् पुरुषः पुराणः।

[भगवान ने एक जन्म में (वराह के रूप में) भूमि का उद्धार किया। एक और जन्म में (परशुराम के रूप में) अपने सब शत्रुओं का उसने नाश किया। एक और जन्म में उसने (वामन के रूप में) बलवानों की राज्य लक्ष्मी (यानी राजा बलि की राज्य-लक्ष्मी) ले ली। इस तरह भगवान द्वारा किये गये तीन कामों को, राजा भोज ने एक ही जीवन में, वह भी यौवन में सम्पन्न किया है।]

अपने बारे में शाकल्य ने जो कुछ कहा, वह सुन राजा भोज बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसको तीन लाख रुपये इनाम में दिये। शाकल्य बड़ा खुश हुआ।

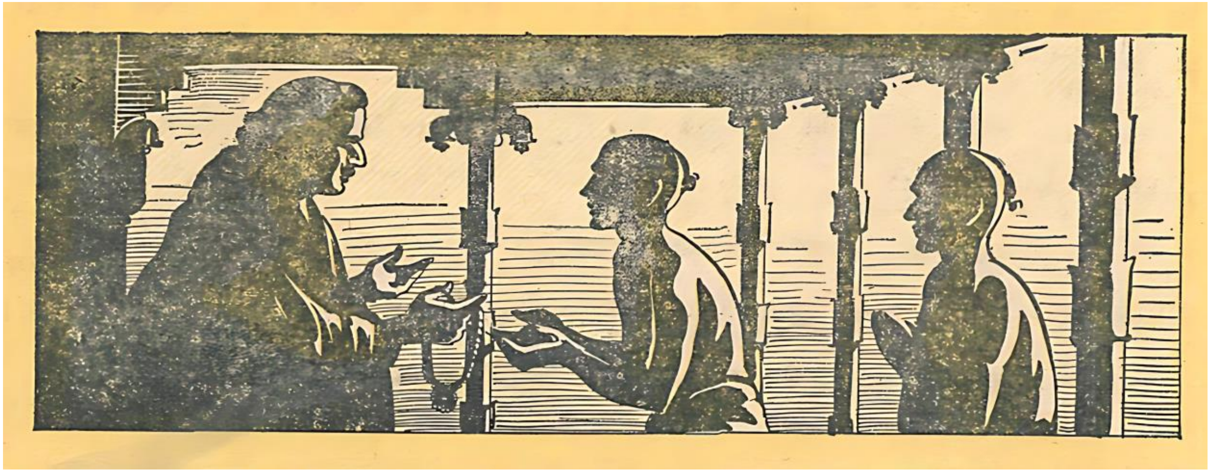

जान से प्यारी खीर

*

एक बड़ा लोभी मूर्ख था। वह और उसकी पत्नी सत्तू खाकर अपना पेट भर लेते थे। उस लोभी को एक दिन खीर खाने की सूझी। उसने दरवाज़ा बन्द कर, पत्नी को खीर बनाने के लिये कहा।

इतने में किसी मित्र ने किवाड़ खटखटाया। लोभी की पत्नी ने किवाड़ खोला। क्यों वे (उसके पति) हैं?" उसने पूछा।

लोभी की पत्नी कोई जवाब न दे सकी। उसने अपने पति के पास जाकर कहा कि कोई उनसे मिलने आया है।

"अरी पगली देख! मैं ऐसे सो जाता हूँ, जैसे मेरी मौत हो गई हो। तू मेरे पैरों पर पड़ रोना। असके चले जाने के बाद हम मज़े में खीर खायेंगे।" लोभी ने कहा।

इस बीच उसके मित्र ने, उसको 'मृत' और उसकी पत्नी को रोता देखा। रसोई घर से खीर की सुगन्ध आ रही थी।

दोस्त ने यह सोचकर कि यह कोई चकमा देने जा रहा है, कहा-"अरे दोस्त! हम सब को छोड़कर चले गये।" वह भी रोने-पीटने लगा। उसका रोना सुन लोभी के और सम्बन्धी भी जमा हो गये। वे लोभी के दहन-संस्कार का प्रबन्ध करने लगे।

"क्यों जी! कम से कम अब तो उठिये।" लोभी की पत्नी ने उसके कान में कहा।

"ठहर भी, अगर मैं अब ज़िन्दा हो उठा तो इन सब को खीर बाँटनी पड़ेगी।" यह चिल्ला, लोभी फिर ऐसे सो गया, जैसे मर गया हो। उसकी मूर्खता पर हँसते हँसते, सब लोग चले गये।

प्रतिफल

सूरजपुर में दौलतराम नाम का एक दौलतमन्द आदमी रहा करता था। बाप-बेटे ने लक्ष्मी को तिज़ोरी में क़ैद कर रखा था। कहीं वह भाग न जाये, इस डर से वे दिन-रात लाख आँखों से उसकी रखवाली किया करते। वह यह भी न चाहते थे कि किसी को मालूम हो कि वे पैसे-वाले हैं, इसलिये वे फटा-पुराना पहनते, और रूखी-सूखी खाते।

उन दिनों आस-पास के इलाकों में डाकू-डकैतों का अधिक डर था। कई गाँवों में डाकुओं ने हमला किया, लूटा-खसोटा, कई रईस लोगों का मार भी डाला और उनके घरों को जला दिया।

वे कभी न कभी सूरजपुर पर भी हमला करते, इसलिये बाप-बेटे ने अपने धन को सुरक्षित रखने के लिये एक उपाय सोचा।

"रात के समय, हम सारा धन श्मशान में ले जाएँ, और किसी मौके की जगह पर, उसको गाड़कर, सवेरा होते होते घर वापिस चले आएँ।" पिता ने कहा।

उसी दिन रात को रुपया, फावड़ा आदि लेकर, अन्धेरे में वे श्मशान की ओर चले। उसी शहर में एक भिखारी भी था। उसका न कोई घर था, न ठिकाना। पहनने के लिये बस एक छोटा-सा कपड़ा था। बरसों से उसे पेट भर खाना नहीं मिला था।

उस रात को उस भिखारी को कुछ भी खाने को नहीं मिला। उसे नींद नहीं आ रही थी। जब वह करवटें ले रहा था तो उसको गली में दौलतराम और उसका लड़का जाते हुए दिखाई दिये। उनके कन्धों पर बड़े बड़े थैले थे। एक हाथ में

श्री. देवयानि बोले

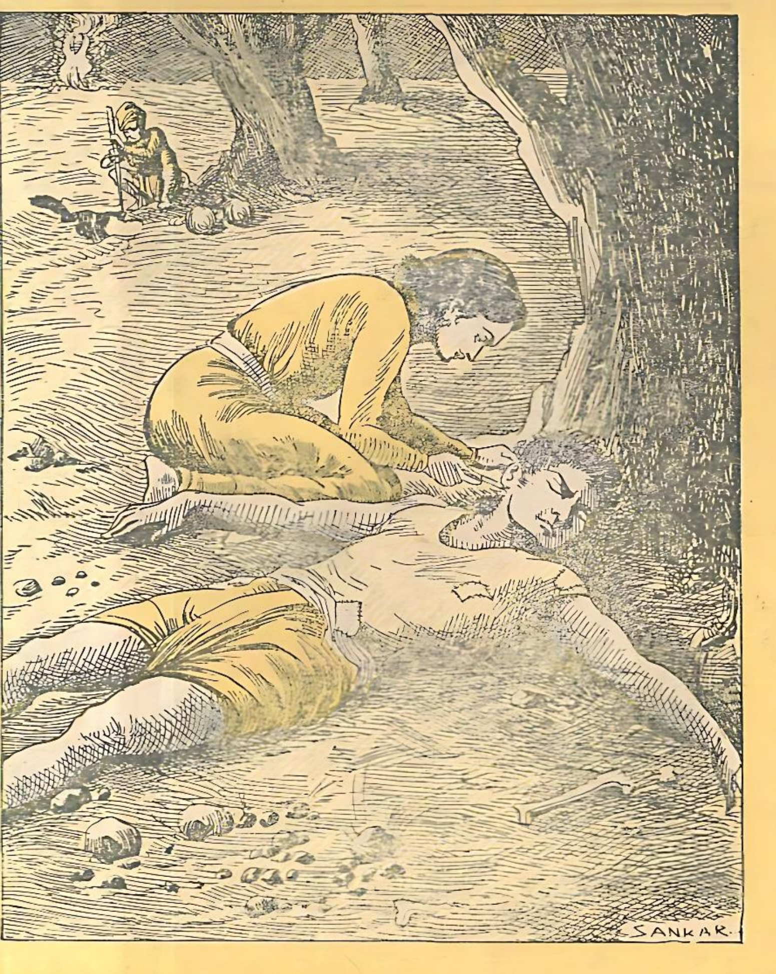

फावड़ा था। वे बिना किसी आहट के, चुपचाप, पैर दबाये चले जा रहे थे। यह देख उस भिखारी को सन्देह हुआ। वह भी उनके पीछे चल दिया।

श्मशान में पहुँचकर, बाप-बेटे ने, एक कोने में अपने थैले उतारे। एक अच्छी जगह ढूँढ़कर दौलतराम फावड़े से गढ़ा खोदने लगा। भिखारी चुपचाप एक पेड़ की ओट में खड़ा हो गया। इतने में दौलतराम ने सिर उठाकर देखा। "उस पेड़ के पीछे कोई सफ़ेद चीज़ दिखाई दे रही है। देखो, क्या है वह?"उसने कहा।

जब लड़का पेड़ के पास पहुँचा तो भिखारी ने आँखें मींच लीं और शरीर को ऐसा बना लिया, जैसे कोई काठ का टुकड़ा हो, और लेट गया। वह मुर्दा-सा लगता था।

दौलतराम के लड़के ने यह जानने के लिये कि सचमुच वह मुर्दा ही है, जेब में से एक चाकू निकालकर उसका कान काट लिया। भिखारी को दर्द तो हुई, पर उसने जैसे-तैसे सह लिया।

लड़के ने पिता के पास जाकर कहा- "किसी भिखारी का वह शव है। यह देखो, उसके कान भी काट लाया हूँ।"

"चाकू ज़रा मुझे तो दो।" कहता हुआ दौलतराम भी भिखारी के पास गया। उसे भी पेड़ के पीछे पड़ी हुई चीज़ शव ही लगी। फिर भी उसने चाकू से भिखारी की नाक काट ली, ताकि उसके ज़िन्दा होने में कोई सन्देह न रहे। भिखारी ने सब कुछ सह लिया। पर चूँ तक नहीं की।

बाद में, बाप बेटे ने गढ़ा खोदा और उसमें थैले डालकर, गढ़ा बन्द कर दिया और वापस चले गये। उनके जाते ही भिखारी उठा। उसने गढ़ा खोदा, थैले निकाले और गढ़ा बन्द करके वह चला गया।

पहले उसने एक झोंपड़ी किराये पर ली। उसी में उसने वह धन रखा। नाक और कान के अच्छे होते होते उसने अपने लिये नये कपड़े भी सिलवा लिये। नाम भी बदल लिया और एक बड़ा-सा मकान खरीदकर उसमें रहने लगा।

कुछ दिनों बाद डाकुओं का डर जाता रहा। कई गाँव के लोगों ने मिलकर डाकुओं का मुक़ाबला किया, और कइयों को पकड़कर राजा को सौंप दिया।

"अब कोई डर नहीं है। आओ हम अपना पैसा फिर ले आयें।" दौलतराम ने अपने लड़के से कहा। रात होते ही दोनों श्मशान गये। उन्होंने वह गढ़ा खोदा, परन्तु उसमें धन के थैले न थे। सवेरे तक वे इधर उधर खोदते रहे। पैसा न मिला। दोनों निराश घर लौट गये। "हम जिसे शव समझ रहे थे, हो न हो, वह कोई ज़िन्दा आदमी था। हमारे जाते ही उसी ने रुपया खोदकर निकाल लिया होगा। उस रुपये की ख़बर, आदमी तो अलग, किसी जानवर को भी नहीं हो सकती थी। यह उसी का काम है।" दौलतराम ने कहा।

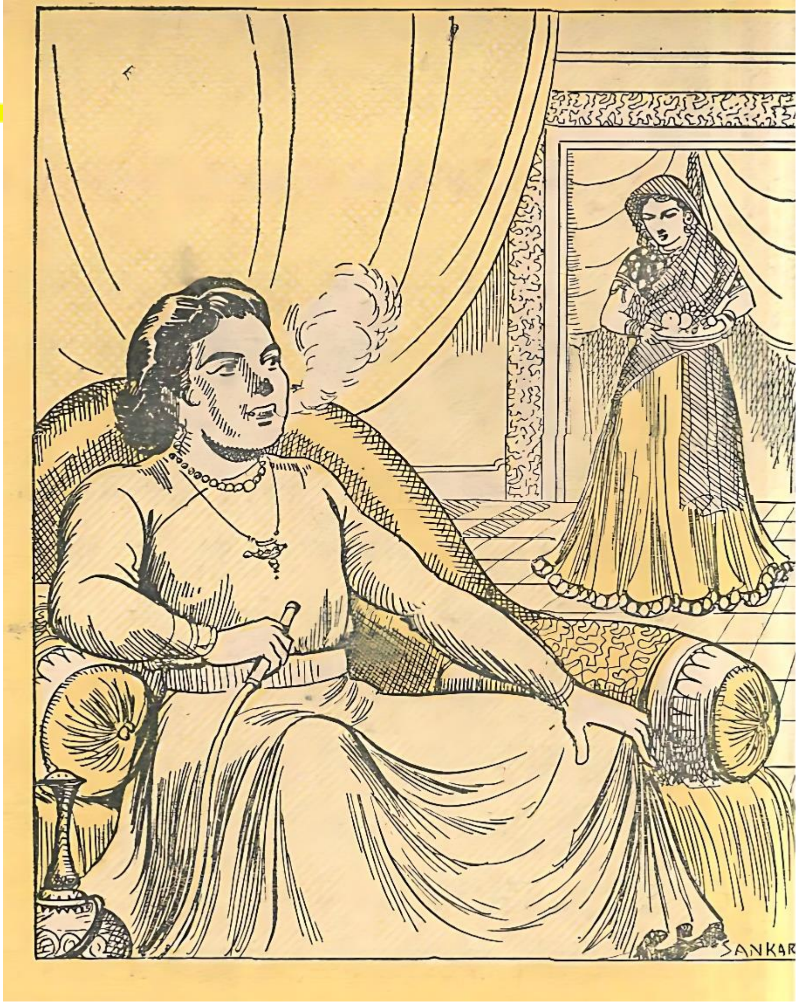

"अगर यह बात सच है तो कोई बिना नाक और कान का, लखपति बनकर कहीं न कहीं जी रहा होगा।" लड़के ने पिता से कहा।

लड़के के यह कहते ही पिता को एक बात सूझी। "तुम सारे शहर में घूमकर यह पता लगाओ कि शहर में कोई नया रईस है कि नहीं।" दौलतराम ने कहा।

बेटे ने पता लगाया कि किसी रईस ने हाल ही में, गली के बीचों बीच एक मकान खरीदा था, और ठाट से रहने लगा। उसके नाक और कान भी नहीं हैं।

तुरन्त दौलतराम ने राजा से फ़रियाद की कि फलाना आदमी उनका रुपया चुरा ले गया है।

राजा ने मुज़रिम और फ़रियादी को बुलाया। दौलतराम ने राजा से कहा-"प्रभू! हमने डाकुओं के डर से अपना सारा धन श्मशान में एक जगह गाड़ दिया था। जब हम अपना धन गाड़ रहे थे तो यह आदमी पेड़ की ओट में से देख रहा था। हमारा धन चुराकर अब यह लखपति बना हुआ है। आप न्याय कीजिये।"

"क्या यह ठीक है कि तूने इनको अपना धन गाड़ते देखा था? क्या यह सच है कि तूने ही इनका पैसा चुराया था?" राजा ने पूछा।

"जी हाँ, हुज़र ! यह बिलकुल सच है।" मुज़रिम ने कहा।

"तो उनका पैसा उनको वापिस दे दो।" राजा ने कहा।

"प्रभू! मैंने चोरी नहीं की है। यह सच है कि मैंने इनके धन को लिया था; परन्तु उस धन के बदले उन्होंने मेरी नाक, और कान काट लिये हैं। अगर वे मेरी नाक और कान वापिस दे दें, तो मैं भी उनका पैसा वापिस कर दूँगा।" मुज़रिम ने अपने नाक और कान दिखाते हुए निवेदन किया।

राजा ने सब सुनकर कहा-"मुज़रिम का इसमें कोई क़सूर नहीं है। उसके नाक और कान उसको वापिस देकर, अपना पैसा उससे वसूल कर लो। नहीं तो वह पैसा उसी का है। उसने उसके लिये वह दाम दिया है, जो कोई नहीं देता है।

राजा का फैसला सुनकर दौलतराम और उसके लड़के बहुत लज्जित हुए और रोनी सूरत बनाये बाहर चले आये।

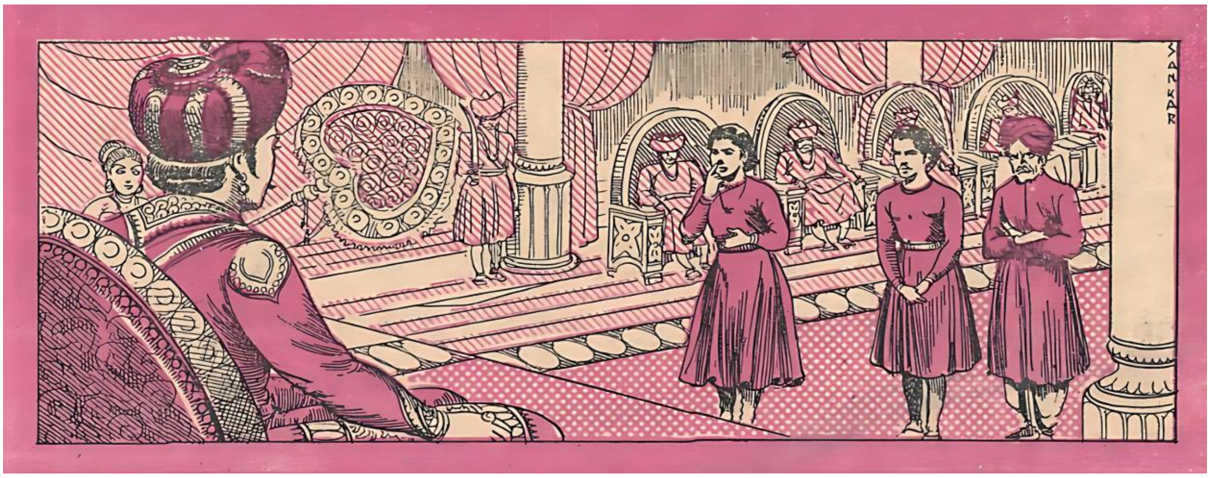

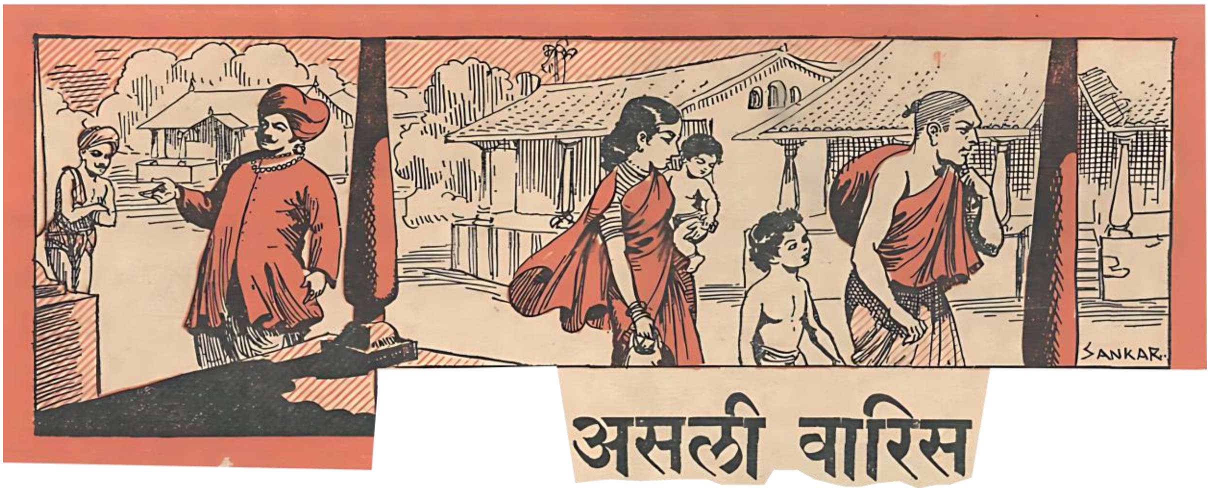

असली वारिस

किसी ज़माने में पुनीत नाम का एक ब्राह्मण एक गाँव में रहा करता था। उसका सुदामा नामक इकलौता लड़का था। वह कतई मूर्ख था। पढ़ना-लिखना सीखना तो अलग, वह कई बुरी आदतें भी सीख गया था। पुनीत के पास पैसा, घर, ऐश्वर्य वगैरह सब कुछ था, परन्तु सुदामा, पिता के जीते जी ही, पैसा बरबाद करने लगा।

पुनीत के दिल में यह बात घर कर गई कि उसका लड़का सुधर न सकेगा। इसी फ़िक्र में उसने चारपाई पकड़ी और थोड़े दिनों बाद वह मर गया। पिता की साया हटी कि नहीं, सुदामा पैसे को हाथ के मैल की तरह साफ़ करने लगा। देखते देखते पैसा ख़तम हो गया। सिर्फ़ घर और घर का दालान बाकी रह गया। वह भी उसने एक बनिये को बेच दिया, और अपनी पत्नी और बाल-बच्चों के साथ कहीं और चला गया। उस गाँव में वह ग़रीब की तरह गुज़ारा करता हुआ अपना मुँह न दिखा पाता था।

उस बनिये का, जिसने सुदामा का घर खरीदा था, भाग्य अच्छा न निकला। व्यापार में उसको बड़ा नुक़सान हुआ। अन्त में उसके पास वह घर और घर से लगा दालान मात्र ही रह गया। वह बनिया भी मर गया। घर, दालान वगैरह उसके लड़के रामलाल को वसीयत में मिले।

रामलाल समझदार था। पिता ने उसे कुछ भी नकद रुपया न दिया था। पर साथ के व्यापारियों में वह अपनी ईमानदारी के लिये मशहूर था। इसलिये उन्होंने उसको गाँव में एक पंसारी की दुकान खोलने में मदद की। उसने सोचा कि दालान में कुछ शाक-सब्जी क्यों न बोई जाय?

श्रीमती डी. मञ्जुलता

वह एक दिन शाम को दुकान बन्द कर घर आया। फावड़ा लेकर वह दालान खोदने लगा। जब वह एक कोने में खोद रहा था तो आवाज़ हुई। उसने ग़ौर से देखा तो वहाँ दो कलशों की जोड़ी थी। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

रामलाल मन ही मन खुश हो, उन कलशों को घर के अन्दर पत्नी के पास ले गया। उन दोनों ने बड़ी खुशी खुशी उनका ढक्कन खोला; पर जब उन्होंने कलशों के भीतर देखा तो वे हताश हो गये। क्योंकि कलश में बड़े बड़े बिच्छू भरे पड़े थे।

"यह धन हमारा नहीं है। इसे दूर फेंक दो।" उसकी पत्नी ने कहा।

"अरे पगली, वह सोना ही है। जब तक उसका मालिक नहीं आ जाता, तब तक वह सोने की तरह नहीं दिखाई देगा।" रामलाल ने कहा।

उसकी पत्नी को इस पर विश्वास नहीं हुआ। "अगर आप यह सोचते हैं तो क्या वह एक को सोना दिखाई देगा, और दूसरे से कुछ और? अगर सबको इसमें बिच्छू ही दिखाई दिये, तब तो फेंक देंगे? घर में रखना बेकार है।" उसने पति से कहा।

रामलाल को यह सलाह अच्छी लगी। उसने चार बिच्छुओं को धागे से बाँधकर, दुकान के चारों कोनों में लटका दिया। जो कोई दुकान पर आया, उसको वे बिच्छू दिखाई दिये।

"भाई, दुकान में ये मरे बिच्छू क्यों लटका रखे हैं?" सब पूछा करते।

"ग़रीब हूँ, क्या करूँ? किसी ने कहा कि बिच्छू महालक्ष्मी है, मैंने इसलिये उसी को यहाँ लटका दिया।" रामलाल पूछने वालों से यों कहा करता।

"लक्ष्मी बिच्छू में क्यों होगी? कौन जाने क्या है?" वे गुनगुनाते चले जाते।

कुछ दिनों बाद एक ब्राह्मण नौजवान उसकी दुकान पर आटा-दाल खरीदने आया। जब रामलाल उनकी पोटली बाँध रहा था, तो ब्राह्मण नवयुवक ने दुकान की चारों ओर देखते हुए कहा-"आप तो बहुत रईस मालूम होते हैं। कीमती गहनों को धागों में बाँधकर लटका रखा है। अगर सोना इतना अधिक है तो हम जैसे ग़रीब को बुलाकर दान क्यों नहीं दे देते? कुछ पुण्य तो मिल जाता।" वह हँस दिया।

रामलाल चौंका। "क्यों नहीं, क्यों नहीं! आइये घर में सोना भरा पड़ा है, दान ले जाइये। इससे मुझे बड़ी खुशी होगी।" कहता कहता वह उठा।

पहले तो ब्राह्मण नवयुवक को दुकानदार की बात पर विश्वास न हुआ। परन्तु इस बीच रामलाल ने फिर कहा-"मज़ाक़ नहीं है भाई! आइये, दान लीजिये।"

ब्राह्मण रामलाल के साथ गया। रामलाल ने कलशों का जोड़ा उसके सामने रखकर कहा-"मन्त्र पढ़िये और दान लीजिये। अगर इस जन्म में धन नहीं लिखा है तो

कम से कम अगले जन्म में तो मुझे अवश्य भगवान दे ही देंगे।"

ब्राह्मण ने दान ग्रहण कर लिया। उसने कलश खोलकर देखा। दोनों में सोना था। वह यह सोच नहीं पा रहा था कि बनिये ने इतना दान उसे क्यों दिया था। घर देखने से बनिया ग़रीब ही लगता था।

"कुछ तो आप रख लेते, सारा का सारा मुझे ही दे दिया है?" उसने रामलाल से पूछा।

"अगर रखना चाहूँ तब भी नहीं रख सकता हूँ, भाग्य में लिखा होना चाहिये।" कहते हुये रामलाल ने सारी घटना सुनाई।

सब सुनने के बाद ब्राह्मण नवयुवक ने कहा-"तो ऐसी बात है? तब तो यह घर हमारा ही है। हमारे बाप-दादाओं का यही गाँव था। मेरे पिता यहाँ सब बेच-बाचकर कहीं और चले गये। मैंने छुटपन से ग़रीबी के सिवाय कुछ नहीं देखा है। अब मेरा भाग्य मुझे आपके पास ले आया है। परन्तु मेरी एक इच्छा है। अगर आपने मेरी इच्छा को पूरा करने का वचन दिया तो मैं यह दान लूँगा, नहीं तो मुझे सन्तोष नहीं होगा।"

"कहिये, हो सका तो कर दूँगा।" रामलाल ने कहा।

"इसमें से एक कलश आपको मुझ से दान में लेना पड़ेगा।" ब्राह्मण नवयुवक ने रामलाल से कहा। रामलाल बहुत प्रसन्न हुआ। एक कलश रामलाल को देकर, ब्राह्मण अपने रास्ते चला गया। रामलाल और उसकी पत्नी ने, दान में पाये हुए कलश को फ़र्श पर उलटा। उसमें से सोने के चमचमाते गहने नीचे गिरे।

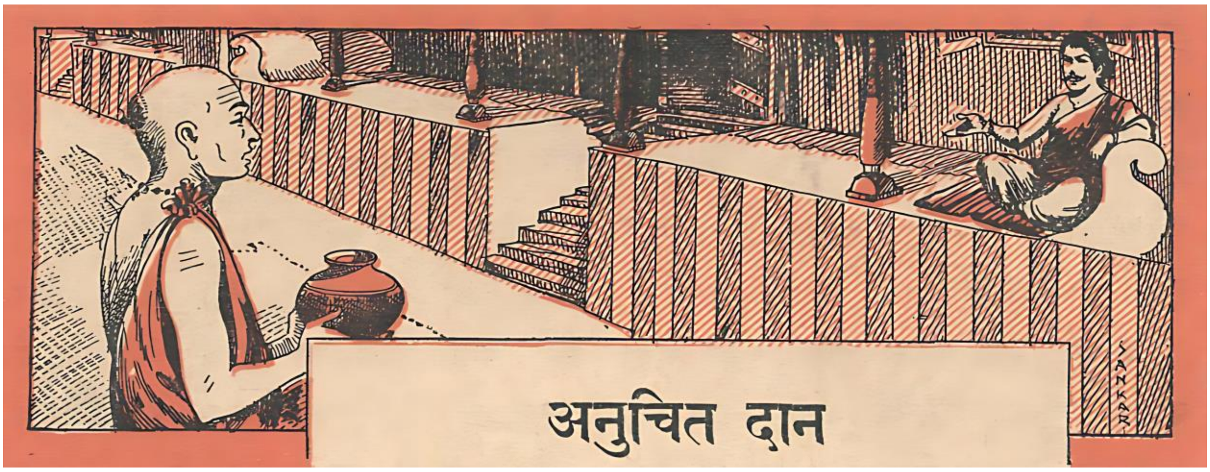

अनुचित दान

चद्रनगर में एक पटवारी रहा करता था। उसके पास बहुत सारी ज़मीन थी, और कई सारे ढ़ोर-डङ्गर भी। परन्तु वह बड़ा लालची था। कुछ खर्च करने की नौबत आ जाती तो वह कँप जाता था। अव्वल दर्जे का मक्खीचूस था।

पटवारी की एक गौ को कोई बीमारी हुई, और बीमारी बढ़ती गई। उसका पेट फूल गया, और उस के लिये साँस लेना भी मुश्किल हो गया। पटवारी को इसका तो दुख था ही कि गौ मर रही है, पर उसको इस बात की भी अधिक फिक्र थी कि मरी गौ को घर से बाहर निकालने के लिये मज़दूरों को दो रुपये देने होंगे। उसे इसकी चिन्ता होने लगी।

पटवारी ने यह बात पत्नी से कही। वह भी पति से कोई कम लालची न थी।

"मरती गौ को तो हम जिला नहीं सकते। यह देखिये कि इसके कारण हमारा खर्च कुछ न हो।" उसने पति को बहुत सोच-समझकर सलाह दी।

"वही तो मैं सोच रहा हूँ।" पटवारी ने कहा। पटवारी, जब घर के बरामदे में बैठा हुआ था तो उस तरफ़ से दान लेनेवाला एक ब्राह्मण गुज़रा। वह ब्राह्मण उस गाँव में अभी नया था। किसी दूसरे गाँव से आया हुआ था। उसे देखते ही पटवारी को एक उपाय सूझा।

"अरे ब्राह्मण! ठीक समय पर दिखाई दिये हो। मैं तुम्हारे ही पास ख़बर भिजवाना चाहता था।" पटवारी ने कहा।

"कहिये, हुज़ूर, क्या बात है?" ब्राह्मण ने पूछा।

"पहले जब मैं एक बार बीमार पड़ा था, तो लोगों ने मुझे गो-दान करने के लिये

श्री बल्लवदास परमार

कहा। पर अब तक गो-दान न कर सका। आज तुम दिखाई दिये हो। गो-दान करूँगा। ले जाओ।" पटवारी ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बाल-बच्चे वाला था। दूध की हमेशा उसे तङ्गी रहती थी। यह सुनकर कि पटवारी बहुत लालची है, उसने उससे कभी कुछ न माँगा था। मगर आख़िर अब वही उसको बड़ा दानी दिखाई देने लगा।

"जब आप दे रहे हैं तो क्या मैं 'नहीं' कर सकता हूँ? परन्तु आज अष्टमी है, अच्छा दिन नहीं है। परसों दशमी के दिन दान लूँगा।" ब्राह्मण ने कहा।

"नहीं, नहीं। वह सब नहीं हो सकता। आज और अभी अपना दान ले जाओ। मुझे किसी काम के बारे में ढीला-ढ़ाली पसन्द नहीं है। क्या गो-दान के लिये शुभ तिथि, घड़ी की ज़रूरत होती है? गो-दान चाहे जब दिया जा सकता है और चाहे जब किया जा सकता है।" पटवारी ने कहा।

अगर नहीं कहता है तो पटवारी उसको और तङ्ग करता, इसलिये गो-दान लेने के लिये आख़िर ब्राह्मण मान गया।

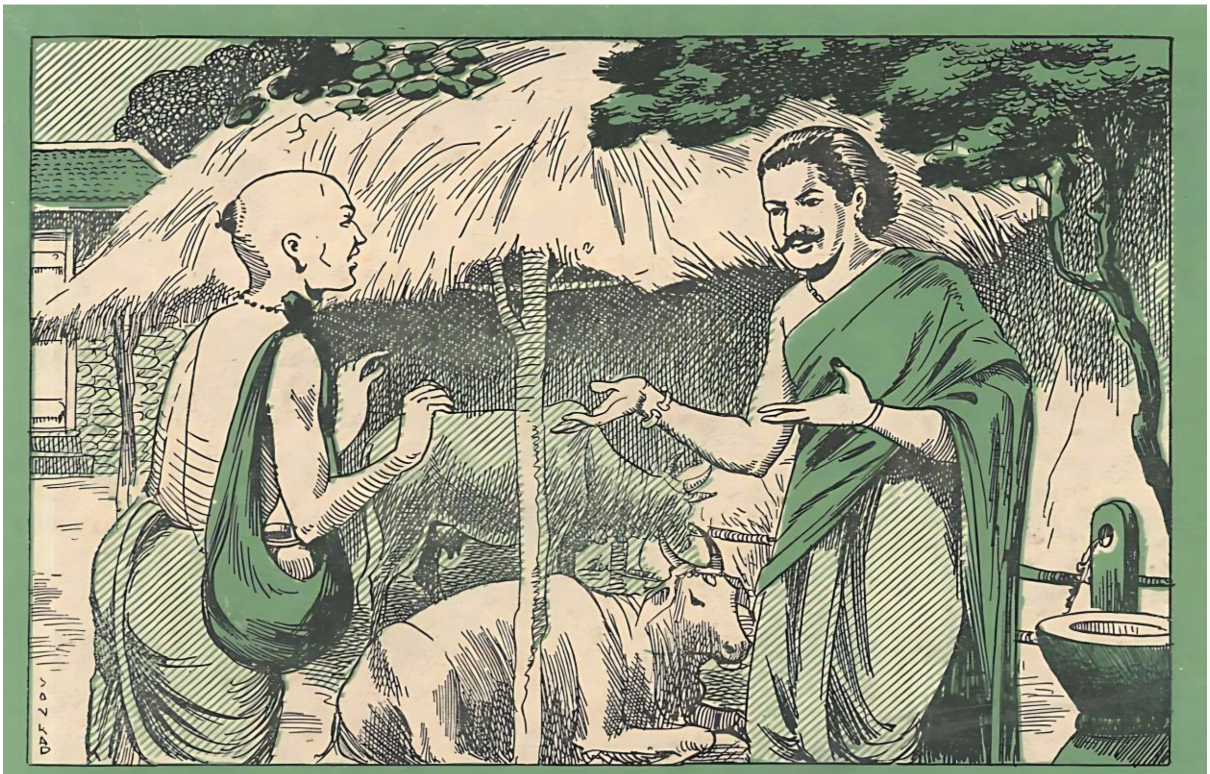

दोनों पटवारी की पशु-शाला में गये। पटवारी ने गौ को, जो अब और तब की हालत में थी, दिखाकर कहा- "वह है, तुम्हारी गाय, ले जाओ।"

ब्राह्मण को तुरन्त पटवारी की सारी धूर्तता समझ में आ गयी थी।

"वह गौ तो अच्छी नहीं मालूम होती है। बीमार लगती है। तड़पती मालूम होती है।" ब्राह्मण ने कहा।

"क्या मैंने कहा था कि वह बीमार नहीं है? मैंने इसी गौ को दान में देने की सोची थी। चाहे वह बीमार हो और चाहे वह मर भी जाये, वह अब तुम्हारी है, मैंने तुम्हें दान में दे दी है। अब मैं उसके लिये किसी तरह भी जिम्मेवार नहीं हूँ।" पटवारी ने कहा।

"आपकी मर्ज़ी! देखें, हमारा भाग्य कैसा है? कौन किसके भाग बना-बिगाड़ सकता है? मैं अपनी गौ को लिये जाता हूँ। ज़रा एक मिनट ठहरिये।" कहता कहता आँगन में किसी पौधे-पत्ते को कुछ देर तक वह ढूँढ़ता रहा।

ब्राह्मण का पिता मशहूर पशु-वैद्य था। उसको भी कई जड़ी-बूटियाँ मालूम थीं। थोड़ी देर में वह एक पौधा उखाड़ लाया, और उसके पत्तों का रस निकालकर उसने गौ की नाक में डाल दिया। गौ छींकी। उसके गले में से नारियल जितना बलगम का गोला बाहर गिरा। तुरन्त गौ खड़ी हो गई। ब्राह्मण उसके गले की रस्सी पकड़कर पटवारी से बिदा लेकर, घर हाँक ले गया।

"अरे अरे! अच्छी गौ ख़्वाहमख़्वाह एक ब्राह्मण को दे दी।" पटवारी ने पछताते हुए पत्नी से कहा। दोनों मिल कर काफी देर तक आँसू बहाते रहे।

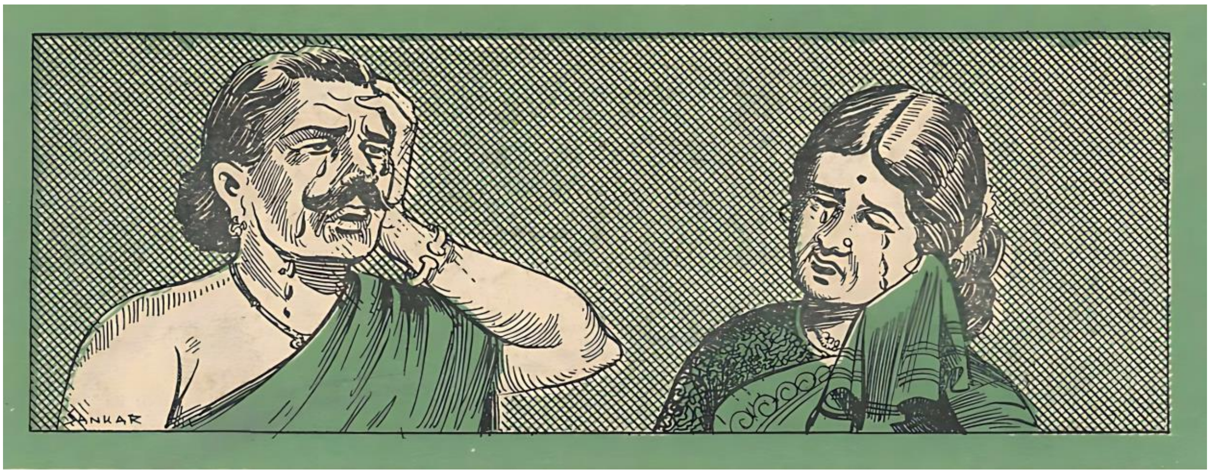

धोबी की बारी

एक राजा बहुत गुसैल था। घमण्डी भी। वह बिना आगा-पीछा देखे तैश में काम किया करता था। लोग उसे देखकर काँपते थे।

सबेरे जब नाई उसकी हजामत बना रहा था तो उसको चाकू लग गया। फिर अस्तबल में आग लगी, और राजा का सब से अच्छा घोड़ा मर गया। थोड़ी देर बाद ख़बर मिली कि राजा की एक नाव समुद्र में डूब गयी थी।

"न जाने आज किसका सबेरे-सबेरे मुँह देखा था, दोपहर भी नहीं हुई कि इतना कुछ हो गया है।" राजा ने सोचा।

सोचते-सोचते उसे याद आया कि सबेरे पहले पहल उसने धोबी का मुँह देखा था। जब वह टहलने जा रहा था तो धोबी ने सामने आकर उसको नमस्कार किया था।

"उसका मुँह देखने के कारण ही यह सत्यनाश हुआ है। उस धोबी को पकड़कर फाँसी पर चढ़ाओ।" राजा ने सैनिकों को आज्ञा दी।

धोबी को पकड़कर लाया गया। उस पर मुक़द्दमा चलाया गया, और उसको सज़ा भी दे दी गयी। उसको फाँसी पर चढ़ता देखने के लिए सारा शहर भी जमा हो गया।

अन्तिम समय में धोबी ने राजा से एक विनती करनी चाही।

"क्या है, तेरी विनती?" राजा ने पूछा।

"सबेरे सबेरे उठकर आपने मेरा मुँह देखा, इसलिये आपके गाल पर उस्तरा लगा, घोड़ा मर गया, नाव डूब गयी। सबेरे सबेरे आपका मुँह देखने से मेरी क्या गति हो रही है, आपने देखा? मेरी जान ही जा रही है।" धोबी ने कहा।

राजा का सारे शहर के सामने अपमान हुआ। उसने धोबी की सज़ा रद्द कर दी। तब से राजा जल्दबाज़ी में कुछ भी न करता था।

घूँस

बगदाद के खलीफा हारून अल रशीद को अक्सर नींद नहीं आती थी। एक रात को जब उसे नींद न आई तो उसने अनुचरों को मनोरञ्जन की व्यवस्था करने की आज्ञा दी। मसरूर ने बताया कि 'इबन अल क़रीबी' नाम का व्यक्ति बड़ी अच्छी अच्छी हास्य कथायें सुनाता है। खलीफ़ा ने कभी उसकी कहानियाँ नहीं सुनी थीं, इसलिये उसने उसे बुलवाया।

मसरूर ने इबन के पास जाकर कहा-"खलीफा से मैं तेरे दर्शन करा दूँगा। परन्तु जो कुछ तुझे वह दे, उसमें तिहाई हिस्सा मेरा रहा।" इबन ने सोचा, खलीफ़ा का दर्शन मिल जाय तो वही काफ़ी है। इसलिये वह मान गया। इबन को देखकर खलीफा ने कहा-"ऐसी कहानियाँ सुनाओ कि मुझे हँसी आये, वरना तुम्हारी खाल उखड़वा दूँगा।" इबन तो यों ही हैरान था। यह बात सुनते ही वह पागल-सा हो गया। उसे एक भी हास्य कथा याद न आई। ऊटपटाँग कहानियाँ सुनाने लगा। खलीफा को गुस्सा आ गया। उसने हुकुम दिया-"इसको सौ कोड़े लगाओ।" जब सैनिकों ने २५- कोड़े लगा दिये तो इबन ने कहा – "ठहरो" क्यों कि उसे तुरन्त याद आया कि जो कुछ उसे मिलेगा, उसमें से तिहाई हिस्सा मसरूर को देना होगा।

खलीफा ने उनका समझौता सुनकर कहा-"बाकी कोड़े मसरूर को लगाओ।"

मसरूर ने पच्चीस कोड़े खाने के बाद कहा-"अल्लाह की क़सम, इतनी बड़ी घूँस लेना बड़ी वाहियात बात है। अब मुझे और नहीं चाहिये।"

यह सुन न खलीफा खूब हँसा ही, बल्कि उसने उन दोनों को एक एक हज़ार दीनार देकर भी भेज दिया।

घोषणा

एक बौद्ध-मठ में एक भिक्षु रहा करता था। वह कतई मूर्ख था। एक दिन वह जब गली में जा रहा था तो उसको एक कुत्ते ने घुटने पर काटा, घाव हो गया। "यह घाव कैसे हुआ? – कितने ही लोग पूछेंगे। मैं सब को कैसे कहता फिरूं? और जब तक घाव न भर जाय, तब तक पूछते ही रहेंगे। इसलिये मैं क्यों न एक बार आम घोषणा कर दूँ?" उसने सोचा।

मठ वापस जाकर उसने एक ढ़ोल लिया और छत पर चढ़ गया; और ढोल पीटने लगा। थोड़ी देर में बहुत से आदमी इकट्ठे हो गये। उनमें से कुछ पूछने लगे-"क्यों ढोल बजा रहा है? क्या बात है?"

"सब ध्यान देकर सुनो। थोड़ी देर पहिले मैं गली में जा रहा था तो मुझे एक कुत्ते ने काट खाया। यह देखिये घाव है।" उस मूर्ख भिक्षु ने कहा। "इस काम के लिये ही क्या इतनी बड़ी घोषणा कर रहे हो?"

सब उसको कोसते कोसते चले गये।

हठी

एक किसान ने खूब अच्छी तरह हजामत बनाकर, अपनी पत्नी के पास जाकर कहा-"देख, कितनी साफ़ बनी है हजामत।" "क्या तुमने उस्तरे से हजामत बनाई है?" नहीं, कैंची से बनाई है।" किसान की पत्नी ने कहा। "झूठ बोल रही है तू, मैंने उस्तरे से करवाई है।" किसान ने कहा। "नहीं, तूने कैंची से करवाई है।" पत्नी ने कहा। किसान ने उसे खूब पीटकर कहा-"अगर तू यह नहीं मानेगी कि मैंने दाढ़ी उस्तरे से बनाई है तो मैं तुझे नदी में फेंक दूँगा।" "चाहे तू कुछ भी कह, तूने दाढ़ी कैंची से ही बनाई है।" किसान ने पत्नी को नदी के पास ले जाकर कहा-"कह, अब कि मैंने दाढ़ी उस्तरे से बनाई है।" "नहीं, कैंची से बनवाई है।" पत्नी ने कहा। "कह कि उस्तरे से बनवाई है।" कहते कहते उसने पत्नी को नदी में ढकेल दिया। पत्नी बोल न सकी। परन्तु डूबती डूबती उसने दो अँगुलियाँ पानी से बाहर निकालकर कैंची का सङ्केत किया।

नीति कथाएँ

अग्नि परीक्षा

कैरो नगर के प्रसिद्ध हास्यकार, गोहा को किसी दूसरे गाँववाले ने भोजन के लिये बुलाया। गोहा को खाने-पीने का बहुत शौक था। इसलिये लोग उसको अक्सर न्योता दिया करते। जो कोई भी बुलाता, गोहा ज़रूर जाता। इस बार भी वह गया। भुनी हुई मुर्गी को गोहा के सामने रखा गया। उसमें से एक टुकड़ा लेकर गोहा ने खाने की कोशिश की। वह चमड़े की तरह दाँतों में खिंची, वह उसे चबा न सका।

तुरन्त गोहा ने उस मुर्गी को पश्चिम की तरफ़ रखा और नमाज़ पढ़ने लगा। यह देख मेज़बान ने हैरान होकर पूछा-"गोहा! यह तुम क्या कर रहे हो? क्या मुर्गी के लिये भी नमाज़ पढ़ी जा रही है ?"

गोहा ने नाक पर अँगुली रखकर कहा-"भाई! क्या यह मुर्गी है? ऊपर ऊपर से तो यह मुर्गी ही मालूम होती है, पर सचमुच एक स्त्री है। इसकी अग्नि में परीक्षा ली गई, और इसका, आग ने कुछ न बिगाड़ा।"

मेज़बान शर्मिन्दा हुआ। उस मुर्गी को वापिस कर दिया। फिर अच्छा भोजन खिलाकर गोहा को विदा किया।

पण्डित

एक आदमी, एक बड़ा डण्डा लेकर एक शहर में पहुँचा। डण्डा सीधा करके ले जाने के लिये ड्योढ़ी की छत नीची थी, और अगर यों ही ले जाना चाहता तो ड्योढ़ी में वह डण्डा न समाता था।

उसे कुछ न सूझा कि क्या करे। इतने में किसी ने बताया-"पास ही एक बड़ा पण्डित रहता है। उससे पूछो, शायद वह कोई उपाय बता दे। उसके अलावा इस उलझन को कोई नहीं सुलझा सकता।"

वह बड़ी उलझन में पड़ा।

सौभाग्य से उसी समय वह पण्डित गधे पर चढ़ उस तरफ़ आ रहा था। डण्डेवाले के पूछने पर वह पण्डित सलाह दे रहा था।

परन्तु उन्होंने इस बीच में देखा कि वह गधे की पीठ पर नहीं बैठा हुआ था, दुम के पास बैठा हुआ था। उन्होंने पण्डित से पूछा कि वह क्यों उस तरह बैठा हुआ था?

"लगाम ज़रा बड़ी हो गई है; इस कारण इस तरह बैठना पड़ रहा है। यह तो मूर्ख भी जान सकता है।" पण्डित ने कहा।

चीन की हास्य कथा

लक्ष्य देवी

सुँग राजवंश में एक बड़ा वीर व्यक्ति था। एक बार उसको युद्धभूमि में पराजित होने की नौबत आ रही थी कि ऐन वक्त पर एक देवी ने स्वयं उसकी तरफ़ से लड़कर उसको जिता दिया।

तब कृतज्ञ होकर उस महावीर ने पूछा-"मुझे विजय दिलानेवाली आप कौन हैं?"

"मैं लक्ष्य देवी हूँ।" उस देवी ने उत्तर दिया।

"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आपने मुझ पर इतना अनुग्रह क्यों किया है?" महावीर ने पूछा।

"तेरा मुझ पर बहुत ऋण है। जब तू बाण-विद्या सीख रहा था, तब तूने मुझे एक बार भी न बींधा। मैं तेरा कृतज्ञ हूँ।" लक्ष्य देवी ने कहा।

रंगीन चित्र-कथा चित्र—४